जैन धर्म की कहानियाँ

भाग-23

प्रकाशक :

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन-सोनगढ़

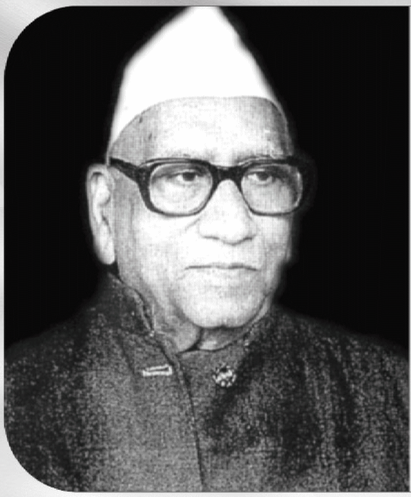

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ३१ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग - २३)

लेखक :

ब्र. हरिभाई, सोनगढ़

संकलक :

पं. प्रेमचंद जैन, खैरागढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
महावीर चौक, खैरागढ़ – 491 881 (छत्तीसगढ़)
और
श्री कहान स्मृति प्रकाशन
कहान रश्मि, सोनगढ़ - 364 250 (सौराष्ट्र)

—— प्रथम संस्करण ——
2200 प्रतियाँ
त
26 से 28 मार्च, 2017
श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जिनमन्दिर खैरागढ़
के शिखर कलशारोहणोत्सव पर प्रकाशित

© सर्वाधिकार सुरक्षित

न्यौछावर : दश रुपये मात्र

मुद्रण
जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर
मोवाइल : 094147-17816
e-mail
jaincomputers74@gmail.com

प्राप्ति स्थान

१. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५
२. पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता लामरोड
देवलाली,नासिक-४२२ ४०१
३. तीर्थधाम मंगलायतन
पो.- सासनी २०४ २१६
जिला- हाथरस (उ.प्र.)
४. श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट
आ. कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर
सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५
जिला-दतिया (म.प्र.)

अनुक्रमणिका

1.	आहारदान की अनुमोदना का फल	9
2.	श्री ऋषभमुनि का हस्तिनापुर में प्रथम पारणा	16
3.	कर्मोदय की बिडम्बना में भी ज्ञान-वैराग्यशक्ति	23
4.	श्री वर्द्धमानमुनि का सती चंदनवाला द्वारा पारणा	27
5.	श्री वर्द्धमानमुनि को केवल्य और चंदनवाला की दीक्षा	35
7.	महासती चंदनबाला : पूर्वभवावलोकन	39
7.	महाराजा पद्मनाभ (चंद्रप्रभ भगवान का पूर्वभव)	45
8.	धातकीखण्ड में अजितसेन चक्रवर्ती (चंद्रप्रभजी का पूर्वभव)	49
9.	विद्युच्चर राजकुमार के परिणामों की विचित्रता	53
10.	विद्युच्चर मुनिराज का संघ सहित समाधिमरण	58
11.	पराश्रित परिणाम नियम से दुःखदायी	60
12.	राजगृही में विश्वनंदि राजकुमार (महावीर भगवान का पूर्वभव)	63
13.	मनुष्य दुखी और तिर्यंच सुखी (शांतिनाथ भगवान का पूर्वभव)	66
14.	श्रीकृष्ण की जन्मकथा एवं पृष्ठभूमि	72

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि सदस्य २१००१/- में, परमसंरक्षक सदस्य ११००१/- तथा संरक्षक सदस्य ५००१/- में बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से २३ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ३१ पुष्पों में लगभग ७ लाख १० हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में पुराण-पुरुषों के भव-भवान्तरों के साथ-साथ आहारदान के ऊपर विशेष प्रकाश डालने के अर्थ राजा वज्रजंघ, राजा श्रेयांस, सती चंदनबाला के प्रसंग विशेष रूप से दिए गये हैं। जो सभी पं. प्रेमचंदजी ने ब्र. हरिलालजी द्वारा लिखित साहित्य में से संकलित किये हैं। इसका सम्पादन पं. रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम सभी आपके आभारी हैं।

इन कथा-कहानियों का लाभ बाल युवा वृद्ध सभी वर्ग के लोग ले रहे हैं, यही इनकी उपयोगिता तथा आवश्यकता सिद्ध करती है। इसी कारण पिछले २८ वर्षों से निरन्तर इनकी मांग बनी हुई है। आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे। साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
''**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़**'' के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

विनम्र आदराञ्जली

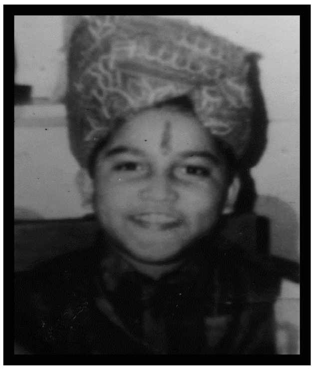

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

हमारे मार्गदर्शक

श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव
पिता – स्व. फतेलालजी बरडिया

श्रीमती स्व. सन्तोषबाई बरडिया
पिता – स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दम्पत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् १९९३ में आप लोगों ने ८० साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

विशेष – आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

परिवार

पुत्र	**पुत्रवधु**	**पुत्री**	**दामाद**
ललित	लीला	चन्द्रकला	गौतमचंद बोथरा,
स्व. निर्मल	प्रभा		भिलाई
अनिल	मंजु	शशिकला	अरुणकुमार पालावत,
सुनील	सुधा		जयपुर

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य
श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की ह. शीतल विजेन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खारड़ीया

शिरोमणि संरक्षक सदस्य
झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
स्व. धापू देवी ताराचन्द गंगवाल, जयपुर
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
श्री दुलीचंदजी अनिल-सुनील बरड़िया, नांदगांव
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई

परमसंरक्षक सदस्य
श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
सरिता बेन ह. पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, तेजपुर
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद

संरक्षक सदस्य
श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह. श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
स्व. श्री जेठाभाई हंसराज, सिकंदराबाद
श्री शांतिनाथ सोनाज, अकलूज
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
श्री लवजी बीजपाल गाला, बम्बई
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
श्रीमती शांताबेन श्री शांतिभाई झवेरी, बम्बई
स्व. मूलीबेन समरथलाल जैन, सोनगढ़
श्रीमती सुशीलाबेन उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्री बिशम्भरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
सौ. सविताबेन रसिकभाई शाह, सोनगढ़
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी उज्जैन,
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई

श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, जैतपुर
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
श्रीमती तेजबाई देवीलाल मेहता, उदयपुर
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
श्री फूलचंद चौधरी, बम्बई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री लक्ष्मीचंद सुन्दरबाई पहाड़िया, कोटा
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
सौ. चिंताबाई मिट्ठूलाल मोदी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
सौ. कंचनदेवी जुगराज कासलीवाल, कलकत्ता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
स्व. सुशीलाबेन हिम्मतलाल शाह, भावनगर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री सत्संग महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. गुलाबदेवी लक्ष्मीनारायण रारा, शिवसागर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता लालचन्द जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल जैन, खैरागढ़
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्री प्रशम जीतूभाई मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
श्री पारसमल महेन्द्रकुमार, तेजपुर
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर

1

आहारदान की अनुमोदना का फल

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश की उत्पलखेटक नगरी के राजा वज्रबाहु के यहाँ भावी तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के जीव ने वज्रजंघ के रूप में जन्म लिया।

जब पिता महाराज वज्रबाहु को वैराग्य हुआ, तब उन्होंने वज्रजंघ का राज्याभिषेक कर उन्हें राज्य सौंपकर जिनदीक्षा ले ली।

अब उत्पलखेटक नगर का न्याय-नीति से राज्य करते हुए राजा वज्रजंघ सुखपूर्वक रह रहे थे। एक दिन उन्हें समाचार मिला कि उनके ससुर वज्रदंत चक्रवर्ती की कमल पुष्प में आसक्त भंवरे की मृत्यु देखकर वैराग्य परिणति उग्र हुई और वे जिनदीक्षा लेकर वन को चले गये हैं। दीक्षा लेने से पूर्व उन्होंने अपने 1000 पुत्रों को बुलाकर उन्हें राज्य देने की भावना व्यक्त की; परन्तु एक-एक करके सभी पुत्रों ने राज्य लेने से इंकार कर दिया और सभी ने उनके ही साथ दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की।

इसलिए अन्त में पुण्डरीक नामक छोटी उम्र के पौत्र को राज्य भार सौंपकर वज्रदन्त चक्रवर्ती ने साठ हजार रानी, बीस हजार राजा तथा एक हजार पुत्रों सहित जिनदीक्षा धारण कर ली। यहाँ राजमाता लक्ष्मीमती को चिन्ता हुई कि पुण्डरीक तो अभी छोटा बालक है, वह इतने बड़े राज्य का भार कैसे सम्हाल सकेगा ? इसलिये उन्होंने उत्पलखेटक नगर सन्देश भेजकर राजा वज्रजंघ को सहायतार्थ बुलवाया। सन्देश मिलते ही राजा वज्रजंघ पुण्डरीकिणी नगरी जाने के लिये तैयार हुए। मतिवर मंत्री, आनन्द पुरोहित, धनमित्र सेठ और अकम्पन सेनापति – इन चारों ने भी वज्रजंघ राजा के साथ प्रस्थान किया। रानी

श्रीमती भी साथ ही थीं। चलते-चलते राजा वज्रजंघ एक सुन्दर सरोवर के तटपर आये और वहाँ पड़ाव डाला। भविष्य में जो तीर्थंकर होने वाले हैं ऐसे वज्रजंघ का डेरा होने से सारा वन भी मानों प्रफुल्लित हुआ हो – ऐसा शोभायमान हो उठा। स्नानादि के पश्चात् सब भोजन की तैयारी कर रहे थे।

राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती ने भोजन करने से पूर्व यह भावना भायी कि इस अवसर में यदि कोई मुनिराज पधारते, तो हम प्रथम उनका पड़गाहन करके उन्हें निरन्तराय आहार कराके ही भोजन करते। महापुरुषों की पवित्र भावनाएँ कभी निष्फल नहीं होतीं। वे यहाँ ऐसी भावना भा ही रहे थे कि इतने में अचानक दो गगनविहारी मुनिवर दमधर और सागरसेन वहाँ पधारे। **अहा, मुनिवर पधारे मानों साक्षात् मोक्षमार्ग ही आ गया ! आकाश से उतरते हुए मुनिवरों को देखकर ही राजा और मंत्री आदि सबको हर्ष एवं महान आनन्दाश्चर्य हुआ। अरे ! वन के सिंह, बन्दर, शूकर और नेवला जैसे पशु भी मुनिराज को देखकर हर्षित हो उठे।**

उन मुनिवरों की वन में ही आहार लेने की प्रतिज्ञा थी। वे अत्यन्त तेजस्वी थे और पवित्रता से शोभायमान थे मानों स्वर्ग और मोक्ष यहीं पृथ्वी पर उतर आये हों। दोनों मुनिवरों को अपने डेरे के निकट आते ही राजा-रानी ने अति आनन्द एवं भक्ति सहित उनका पड़गाहन किया कि 'हे स्वामी ! पधारो.... पधारो.... पधारो।'

श्री मुनिराज के रुकते ही वज्रजंघ और श्रीमती ने भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा की, नमस्कार करके सम्मान किया और योग्य विधिपूर्वक भोजनशाला में प्रवेश कराके उच्चासन दिया, उनके चरणों का प्रक्षालन, पूजन एवं नमन किया और पश्चात् मन-वचन-काया की शुद्धिपूर्वक दाता के सात गुण (श्रद्धा, संतोष, विवेक, अलुब्धता

(अलोलुपता), क्षमा, शक्ति अनुसार दान, भक्ति) सहित विशुद्ध परिणामों से उन उत्तम मुनिवरों को विधिपूर्वक आहारदान दिया। (अभी उन्हें खबर नहीं है कि जिन्हें आहारदान दिया वे उनके अपने पुत्र ही थे।) मुनिराज के आहारदान का वह भव्य आनन्दकारी प्रसंग था।

उस उत्तम आहारदान के प्रभाव से तुरन्त ही वहाँ पाँच आश्चर्यजनक वस्तुएँ प्रगट हुईं – (१) आकाश से रत्नवृष्टि होने लगी (२) पुष्प वर्षा होने लगी (३) सुगन्ध बरसने लगी (४) दुंदुभि आदि बाजे बजने लगे और (५) आकाश में देवगण ''अहो दानं....महादानं'' ऐसे शब्दपूर्वक जयजयकार करने लगे।

आहार के पश्चात् वे मुनियुगल को विदा करके वापस आ रहे थे, तब उन्हें अपनी एक वृद्ध दासी से ज्ञात हुआ कि यह तो हमारे ही सबसे छोटे युगल पुत्र हैं। भले ही यह रिस्ता गृहस्थ अवस्था का था, पर साक्षात् मोक्षमार्ग के रूप में उनको देखकर राजा-रानी का हृदय अत्यन्त प्रमुदित हो उठा। धर्मोपदेश सुनने की भावना से वे सभी पुनः वहीं मुनिराज के समक्ष बैठ गये।

पश्चात् राजा वज्रजंघ ने पूछा प्रभो ! ये मतिवर मंत्री, आनंद पुरोहित, धनमित्र सेठ और सेनापति अकम्पन ये चारों मुझे अतिप्रिय

हैं – इसका क्या कारण हैं ? तब दमधर मुनिराज ने कहा – पूर्वभवों में जब तुम प्रीतिवर्धन राजा थे और तुमने आज ही की तरह वन में मुनिराज को आहार दान दिया था, तब मतिवर मंत्री का जीव सिंह था। आहारचर्या देखकर सिंह को जातिस्मरण हो गया। जिससे वह बिल्कुल शान्त हो गया और आहारादि का त्याग करके एक शिला पर जा बैठा।

मुनिराज ने अवधिज्ञान द्वारा यह जानकर प्रीतिवर्धन राजा से कहा– हे राजन् ! यह सिंह श्रावक के व्रत धारण करके संन्यास ले रहा है, तुम्हें इसकी सेवा करना योग्य है; भविष्य में यह भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का पुत्र होगा और चक्रवर्ती होकर उसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा। मुनिराज की बात सुनकर राजा ने सिंह को प्रेम से देखा और उसके कान में नमस्कार मंत्र सुनाया। अठारह दिन की सल्लेखना के पश्चात् शरीर का त्याग करके वह सिंह दूसरे स्वर्ग का देव हुआ और वहाँ से चलकर यह मतिवर मंत्री हुआ है।

उस सिंह के अतिरिक्त प्रीतिवर्धन राजा के सेनापति, मंत्री और पुरोहित – इन तीनों ने भी आहारदान का अनुमोदन किया था, इसलिए ये भोगभूमि में जन्म लेने के बाद में दूसरे स्वर्ग के देव हुए। तुम्हारी (वज्रजंघ की) ललितांगदेव की पर्याय में वे तीनों तुम्हारे ही परिवार के देव थे और वे ही यहाँ तुम्हारे पुरोहित, सेठ और सेनापति हुए हैं। भविष्य में तुम तीर्थंकर होओगे तब वे भी तुम्हारे पुत्र होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। उनमें से अकम्पन सेनापति तो बाहुबली होंगे, आनन्द पुरोहित तथा धनमित्र सेठ दोनों क्रमशः वृषभसेन तथा अनन्तविजय नामक तुम्हारे पुत्र होकर फिर तुम्हारे ही गणधर होंगे।

इसप्रकार उन मुनिवरों ने वज्रजंघ को उनके मंत्री, पुरोहित, सेठ और सेनापति के पूवभवों का सम्बन्ध सुनाया। मुनिराज के श्रीमुख से अपना ऐसा महान भविष्य सुनकर उन सबको बड़ा हर्ष हुआ। जब

वे मुनिवर यह सब वृत्तान्त कह रहे थे तब नेवला, सिंह, बन्दर और शूकर ये चारों जीव वहीं समीप बैठे थे और शान्तिपूर्वक मुनिराज की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। यह देखकर आश्चर्य से वज्रजंघ ने पूछा – हे स्वामी ! यह नेवला, सिंह, बन्दर और शूकर यह चारों जीव यहाँ मनुष्यों के बीच भी निर्भयता से आपके मुखकमल की ओर दृष्टि लगाकर क्यों बैठे हैं ? तथा इन्होंने ऐसी निकृष्ट पर्याय किस कारण प्राप्त की ?

उसके उत्तर में मुनिराज ने कहा – सुनो, राजन् ! यह सिंह आदि चारों जीव आहारदान देखकर परम हर्षित हो रहे हैं; ये भी भविष्य में तुम्हारे पुत्र होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

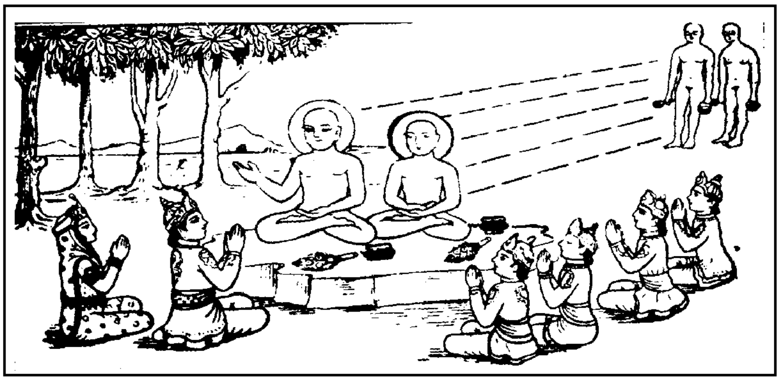

यह सिंह पूर्वभव में हस्तिनापुर में एक व्यापारी का पुत्र था, परन्तु **तीव्र क्रोध के कारण मरकर सिंह हुआ है।**

यह शूकर पूर्वभव में एक राजपुत्र था, परन्तु **तीव्र मान के कारण वह मरकर शूकर हुआ है।**

यह बन्दर पूर्वभव में एक वणिकपुत्र था, परन्तु **तीव्र माया के कारण मरकर बन्दर हुआ है।**

यह नेवला पूर्वभव में एक हलवाई (मिष्टान्न-विक्रेता) था, परन्तु **तीव्र लोभ के कारण मरकर नेवला हुआ है।**

कषायों के फलस्वरूप इन्हें ऐसी हलकी गतियाँ प्राप्त हुईं हैं, इसलिए यह कषायें छोड़ने योग्य हैं।

इस समय यह सिंहादि चारों जीव आहारदान देखकर अति हर्षित हुए हैं और इन चारों को अपने पूर्वभव का जातिस्मरण हुआ है इसलिए ये संसार से एकदम विरक्त हो गये हैं और निर्भय होकर धर्मश्रवण की इच्छा से यहाँ बैठे हैं। तुम दोनों ने आहारदान के फल में भोगभूमि की आयु का बंध किया है और इन सिंहादि चारों जीवों ने भी आहारदान का अनुमोदन करके तुम्हारे साथ ही भोगभूमि की आयु बाँधी है। हे राजन् ! अब यहाँ से आठवें भव में जब तुम ऋषभदेव तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करोगे, तब यह चारों जीव भी उसी भव में मोक्ष को प्राप्त होंगे। मोक्ष तक के सातों भवों में ये सब जीव तुम्हारे साथ ही रहेंगे। यह श्रीमती का जीव भी तुम्हारे तीर्थ में दानतीर्थ की प्रवृत्ति चलाने वाले श्रेयांस राजा होंगे और उसी भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

आकाशगामी चारणऋद्धिधारी मुनिवरों के ऐसे वचन सुनकर राजा वज्रजंघ का मन हर्ष से रोमांचित हो गया तथा श्रीमती रानी, मतिवर आदि एवं सिंहादि सभी जीवों को भी हार्दिक प्रसन्नता हुई। उन सबने मुनिवरों के चरणों में बारम्बार नमन किया। तत्पश्चात् आकाश ही जिनके वस्त्र हैं ऐसे वे नि:स्पृह मुनिवर आकाशमार्ग से अन्यत्र विहार कर गये।

मुनिवरों के विहार कर जाने के पश्चात् राजा वज्रजंघ आदि अपने डेरे में लौट आये और उन्होंने सारा दिन सरोवर के किनारे उन मुनिवरों के गुणों का ध्यान तथा उनकी चर्चा करने में बिताया। पश्चात् क्रमश: प्रयाण करते-करते वे पुण्डरीकिणी नगरी आ पहुँचे और वहाँ कुछ काल रहकर अपने भतीजे पुण्डरीक का राज्य सुव्यवस्थित करके उत्पलखेटक नगरी लौट आये।

वज्रजंघ राजा का जीव क्रमशः भोगभूमि आर्य, श्रीधरदेव,

सुविधि राजा, अच्युतेन्द्र, वज्रनाभि चक्रवर्ती के भव पूर्ण कर श्री ऋषभदेव तीर्थंकर हुआ। और श्रीमती रानी का जीव क्रमशः भोगभूमि आर्या, स्वयंप्रभदेव, केशव पुत्र, अच्युतेन्द्र, धनदत्त सेठ के भव पूर्ण कर राजा श्रेयांस हुए।

इस बीच और भी छह भवों तक ये सभी जीव साथ-साथ विविध पर्यायें धारण करते हुए अंतिम भव में जा पहुँचे। जहाँ सबने जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार की और मोक्ष पधारे। भगवान आदिनाथ प्रभु के जीवन के और भी अनेक प्रसंग प्रेरणादायक हैं, जिन्हें विशेष जानने की जिज्ञासा हो वे चौबीस तीर्थंकर महापुराण अवश्य पढ़ें।

यहाँ उनके आहार/प्रथम पारणा संबंधी प्रसंग को, आहारदान के संस्कार/चमत्कार/प्रक्रिया/विधि और फल को बताने के लक्ष्य से विशेषरूप से दिया जा रहा है, जिसे आप आगामी कथा में अवश्य पढ़ें।

चिंतन बिन्दु –

मैं भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वभावी हूँ। ज्ञाता-दृष्टा रूप रहना ही मेरा धर्म है। अतः अपने को ज्ञाता-दृष्टारूप, चैतन्यरूप, शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही देखो, उस रूप ही अनुभव करो। अपने को शरीररूप, स्त्री-पुरुषरूप, निर्धन-अमीररूप मत देखो। धर्म किसी पररूप नहीं है, अतः वह मंदिर, मूर्ति, भगवान, शास्त्र आदि किसी के आधीन नहीं है। वह तो अपने ही आधीन है।

इसप्रकार समस्त पर पदार्थों से राग-द्वेष-मोह को छोड़कर निज शुद्धात्मा का बारम्बार विचार करो। अपने आत्मस्वरूप में रमण करने का अभ्यास करो, रमण करो, तन्मय हो जाओ। बस ! वही आत्मध्यान है, निश्चय चारित्र है, धर्म है, सहजसुख प्राप्त करने का साधन है, उपाय है।

– पं. पन्नालालजी गिड़िया की डायरी से साभार

2

श्री ऋषभमुनि का हस्तिनापुर में प्रथम पारणा

अचिन्त्य महिमावंत मुनिराज ऋषभदेव छह मास के ध्यान योग करने के उपरांत आहार चर्या को निकले। युग के आरम्भ में इससे पूर्व तो कोई मुनि हुए नहीं थे, इसलिए कोई आहार देने की विधि तो जानता नहीं था, अतः मुनिराज जहाँ भी पधारते वहाँ के लोग प्रसन्नता से आश्चर्य चकित होकर नमन करते और पूछते कि हे देव ! कहिये क्या आज्ञा है ? आप जिस कार्य हेतु यहाँ पधारे हैं वह हमें बतलाइये – आज्ञा दीजिये। अनेक लोग तो हाथी, रथ, वस्त्राभूषण, रत्न तथा भोजनादि सामग्री मुनिराज को अर्पण करने के लिये लाते और कोई तो अपनी युवा कन्या मुनिराज से विवाहने की इच्छा प्रकट करते। अरे रे ! कैसा अज्ञान और कैसी मूर्खता, मुनिराज चुपचाप चले जाते। वे किसलिये पधारे हैं और क्या करना चाहिये ? यह नहीं समझ पाने से लोग दिग्मूढ़ होकर कुछ तो अश्रुपूरित नेत्रों से मुनिराज के चरणों में लिपट जाते। आहार की योग्य विधि न मिलने से लगभग 6 माह से अधिक समय निराहार ही विहार करते रहे, मानो अन्य नवदीक्षित साधुओं को मुनिमार्ग की आहारचर्या का ही दिग्दर्शन कर रहे हों, ताकि उनके सुखपूर्वक यथार्थ मोक्षमार्ग सिद्धि हो सके।

इसप्रकार अनेक नगरों तथा ग्रामों में विहार करते हुए एक दिन मुनिराज ऋषभदेव कुरुदेश के हस्तिनापुर नगर में पहुँचे। उस समय वहाँ के राजा सोमप्रभ और उनके लघु-भ्राता श्रेयांसकुमार थे। पूर्व के आठवें भव में आहारदान के समय जो 'श्रीमती' थी, वही यह श्रेयांसकुमार हैं। मुनिराज जिस दिन हस्तिनापुर पधारनेवाले थे, उसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में श्रेयांसकुमार ने पूर्वसंस्कार के बल से, पूर्वसूचनारूप सात उत्तम

स्वप्न देखे – ऊँचा सुमेरु पर्वत, सुशोभित कल्पवृक्ष, केसरीसिंह, वृषभ, सूर्य-चन्द्र, रत्नों से भरा समुद्र और अष्टमंगल सहित देव। अपने आँगन में मुनिराज का पदार्पण जिनका मुख्य फल है – ऐसे वे सात मंगलस्वप्न देखकर श्रेयांसकुमार का चित्त अतिप्रसन्न हुआ।

प्रात:काल होते ही दोनों भाई उस स्वप्न की बात और मुनिराज ऋषभदेव का गुणगान कर रहे थे कि इतने में उन योगीराज मुनिराज ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया। मुनिराज के आगमन से आनन्दित होकर चारों ओर से नगरजनों के समूह मुनिराज के दर्शन करने उमड़ पड़े। भोले-भाले लोग कहते थे कि मुनिराज फिर अपनी रक्षा करने पधारे हैं। 'ऋषभदेव जगत के पितामह हैं' ऐसा सुना था, उन जगतपिता को आज प्रत्यक्ष देखा। मुनिराज के आगमन की बात सुनकर नगरजन भोजनादि कार्य छोड़कर शीघ्रातिशीघ्र दर्शन करने के लिये निकल पड़े। जब सारे नगर में ऐसा हर्षमय कोलाहल हो रहा था, तब भी मुनिराज तो अपने संवेग और वैराग्य की सिद्धि के लिये वैराग्य भावनाओं का चिन्तन करते-करते अपनी आत्मा की धुन में लीन होकर चले आ रहे थे। आचार्यदेव कहते हैं कि अहो ! ऐसी राग-द्वेषरहित समतावृत्ति को धारण करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

मुनिराज ऋषभदेव राजमहल के सामने पधार रहे हैं यह जानकर

'सिद्धार्थ' नामक द्वारपाल ने तुरन्त ही राजा सोमप्रभ तथा श्रेयांसकुमार को बधाई दी कि "मुनिराज ऋषभदेव अपने आँगन की ओर पदार्पण कर रहे हैं।"

यह सुनते ही दोनों भाई मंत्री आदि सहित खड़े हुए और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक राजमहल के प्रांगण में आकर दूर से ही मुनिराज के चरणों में भक्तिभावपूर्वक नमस्कार किया। मुनिराज के पधारते ही सम्मानसहित पादप्रक्षालन करके अर्घ्य चढ़ाकर पूजा और प्रदक्षिणा दी। अहा, अपने आँगन में ऐसे निधान को देखकर उन्हें अति सन्तोष हुआ। मुनिराज के दर्शन से दोनों भाई हर्षोल्लास से रोमांचित हो गये। आनन्द एवं भक्ति से नम्रीभूत वे दोनों भाई इन्द्र समान सुशोभित हो रहे थे। जिसप्रकार निषध और नील पर्वतों के बीच उन्नत मेरु पर्वत शोभता है, उसीप्रकार श्रेयांसकुमार और सोमप्रभ के बीच मुनिराज ऋषभदेव शोभायमान हो रहे थे। मुनिराज का रूप देखते ही श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण हुआ और पूर्वभव के संस्कार के कारण मुनिराज को आहारदान देने की बुद्धि प्रकट हुई। पूर्व के वज्रजंघ एवं श्रीमती के भव का सारा वृत्तान्त उन्हें स्मरण हो आया। उस भव में सरोवर के किनारे दो मुनिवरों को आहारदान दिया था, वह याद आया। प्रभात का यह समय मुनियों को आहारदान देने का उत्तम समय है – ऐसा निश्चय करके उन पवित्र बुद्धिमान श्रेयांसकुमार ने ऋषभ मुनिराज को इक्षुरस का आहारदान किया।

इसप्रकार ऋषभ मुनिराज को सर्वप्रथम आहारदान देकर उन्होंने इस युग में दानतीर्थ का प्रारम्भ किया। उन्होंने नवधाभक्ति और श्रद्धादि सात गुणों सहित दान दिया। मोक्ष के साधक धर्मात्मा के गुणों के प्रति आदरपूर्वक, श्रद्धासहित जो दाता उत्तम दान देता है वह मोक्षप्राप्ति के लिए तत्पर होता है। अतिशय इष्ट एवं सर्वोत्तम पात्र ऐसे मुनिराज को श्रेयांसकुमार ने पूर्वभव के संस्कार से प्रेरित होकर नवधाभक्ति से प्रासुक

आहारदान दिया। श्री ऋषभ मुनिराज खड़े-खड़े अपने करपात्र में ही आहार ले रहे थे। मोक्षमार्ग के साधक मुनिराज को हाथों की अंजुलि में श्रेयांसकुमार आदि ने इक्षुरस का (गन्ने के प्रासुक रस का) आहार दिया। वह दिन था वैशाख शुक्ला तृतीया, जो बाद में अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उस समय देवगण आकाश से रत्नवृष्टि तथा पुष्पवृष्टि करने लगे। देवों के बाजे गम्भीर नाद से बजने लगे, सुगन्धित वायु बहने लगी और देवगण हर्षित होकर ''धन्य दान.... धन्य पात्र.... धन्य दाता'' ऐसी आकाशवाणी करने लगे। अहा, दान की अनुमोदना करके भी लोग महापुण्य को प्राप्त हुए।

यहाँ कोई आशंका करे कि मात्र अनुमोदना करने से पुण्य की प्राप्ति किसप्रकार होगी ? उसका समाधान यह है कि पुण्य और पाप का बंध होने में मात्र जीव के परिणाम ही कारण हैं; बाह्य कारणों को तो जिनेन्द्रदेव ने 'कारण का कारण' (अर्थात् निमित्त) कहा है। जब पुण्य के साधनरूप से जीवों के शुभ परिणाम ही प्रधान कारण हैं, तब शुभ कार्य की अनुमोदना करनेवाले जीवों को भी उस शुभ-फल की प्राप्ति अवश्य होती है।

रत्नत्रयधारी मुनिराज अपने गृह में पधारे और उन्हें आहारदान दिया, उससे दोनों भाई परम हर्षित हुए और अपने को कृतकृत्य मानने लगे। इसप्रकार मुनियों को आहारदान की विधि प्रसिद्ध करके तथा दोनों भाइयों को प्रसन्न करके मुनिराज पुन: वन की ओर चल दिये। कुछ दूर तक दोनों भाई भक्ति-भीगे चित्त से मुनिराज के पीछे-पीछे गये और फिर रुकते-रुकते लौटने लगे। दोनों भाई बारम्बार मुड़-मुड़कर निरपेक्ष रूप से वन की ओर जाते हुए मुनिराज को पुन: पुन: देख रहे थे। वे दूर तक जाते हुए मुनिराज की ओर लगी हुई अपनी दृष्टि को तथा चित्तवृत्ति को मोड़ नहीं पाये। वे बारम्बार मुनिराज की कथा एवं उनके गुणों की स्तुति कर

रहे थे और धरती पर पड़े हुए मुनिराज के चरण चिन्हों को बारम्बार प्रेम से निहारकर नमस्कार करते थे। नगरजन इन दोनों भाइयों को देखकर कहते कि राजा सोमप्रभ महाभाग्यवान हैं कि उन्हें ऐसा श्रेष्ठ भाई मिला है। रत्नवृष्टि से चारों ओर बिखरे पड़े रत्नों को नगरजन इकट्ठे कर रहे थे। रत्नरूपी पाषाणों से भरे हुए आँगन को कठिनाई से पार करते हुए दोनों भाई राजमहल में आये।

मुनिराज ऋषभदेव को प्रथम आहारदान (पारणा) कराने से श्रेयांसकुमार का यश सारे जगत में फैल गया। मुनि को दान देने की विधि सर्वप्रथम राजा श्रेयांस ने जानी थी, तभी से दानमार्ग का प्रारम्भ हुआ। आहारदान की यह बात जानकर राजा भरत आदि को भी महान आश्चर्य हुआ; वे आश्चर्य से सोचने लगे कि मौन धारण किये हुए मुनिराज का अभिप्राय उन्होंने कैसे जान लिया ? देवों को भी बड़ा आनन्द हुआ और आनन्दित होकर उन्होंने श्रेयांसकुमार का सम्मान किया। महाराज भरत ने भी स्वयं अयोध्या से हस्तिनापुर आकर श्रेयांसकुमार का सम्मान किया और अतिशय हर्ष व्यक्त करते हुए पूछा कि हे महादानपति ! यह तो बतलाइये कि मुनिराज के मन की बात आपने कैसे जान ली ? इस भरतक्षेत्र में पहले कभी नहीं देखी गई ऐसी यह दान की विधि आपने न बतलायी होती तो कौन जान पाता ? हे कुरुराज ! आज आप हमारे लिए गुरु समान पूज्य बने हैं, आप दानतीर्थ के प्रवर्तक हैं, महापुण्यवान हैं; इस दान की पूरी बात हमें बतलाइये।

श्रेयांसकुमार कहने लगे – हे राजन् ! यह सब मैंने उस पूर्वभव के स्मरण से जाना, जब मैं मुनिराज के साथ था। जिसप्रकार रोग दूर करनेवाली उत्तम औषधि प्राप्त करके मनुष्य प्रसन्न होता है और तृषातुर व्यक्ति पानी से भरा हुआ सरोवर देखकर आनन्दित होता है, उसीप्रकार मुनिराज का उत्कृष्ट रूप देखकर मैं अत्यन्त हर्ष-विभोर हो गया था और उसी समय

मुझे जातिस्मरण होने से मैंने मुनिराज का अभिप्राय जान लिया। पूर्व के आठवें भव में जब मुनिराज विदेहक्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी में वज्रजंघ राजा थे, तब मैं उनकी श्रीमती नामक रानी था और तब राजा के साथ मैंने दो चारणऋद्धिधारी मुनियों को आहारदान दिया था; उन संस्कारों का स्मरण होने से मैंने आज भी उसी विधि से मुनिराज को आहारदान दिया। विशुद्धता सहित मुनिवरों को आहारदान देने का अवसर महान भाग्य से प्राप्त होता है।

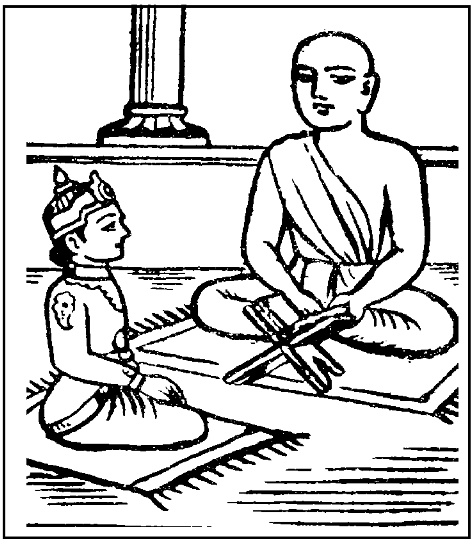

दान का स्वरूप समझाते हुए श्रेयांसकुमार महाराजा भरत से कहते हैं कि स्व-पर के उपकार हेतु मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक अपनी वस्तु योग्य पात्र को सम्मानपूर्वक देना उसे दान कहते हैं। श्रद्धादि गुणों सहित वह दाता है; आहार, औषध, शास्त्र तथा अभय ये चारों वस्तुयें देय (दान में देने योग्य) हैं। जो रागादि दोषों से दूर है तथा सम्यक्त्वादि गुणों से सहित है, वह ही पात्र है। उसमें जो मिथ्यादृष्टि हैं, किन्तु व्रत-शीलयुक्त हैं, वह जघन्य पात्र हैं, अव्रती सम्यग्दृष्टि मध्यम पात्र है और व्रत शील सहित सम्यग्दृष्टि वह उत्तम पात्र है।

व्रत-शील से रहित मिथ्यादृष्टि पात्र नहीं, किन्तु अपात्र हैं। मोक्ष के साधक ऐसे उत्तम गुणवान मुनिराज को दिया गया आहारदान अपुनर्भव का (मोक्ष का) कारण होता है। यहाँ जो दिव्य पंचाश्चर्य (रत्नवृष्टि

आदि) हुए वे दान की ही महिमा को प्रकट करते हैं। अब मुनिराज ऋषभदेव के तीर्थ में मुनि आदि पात्र सर्वत्र फैल जायेंगे, जहाँ-तहाँ मुनि विचरेंगे; इसलिए हे राजर्षि भरत! दान की विधि जानकर आपको भक्तिपूर्वक उत्तम दान देना चाहिये।

इसप्रकार दान का उपदेश देकर श्रेयांसकुमार ने दान-तीर्थ का प्रवर्तन किया। राजा श्रेयांस के श्रेयकारी वचन सुनकर भरत राजा को अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई और उन्होंने अति हर्षपूर्वक राजा सोमप्रभ तथा श्रेयांसकुमार का सम्मान किया। पश्चात् परमगुरु ऋषभदेव के गुणों का चिन्तन करते-करते वे अयोध्यापुरी लौटे।

इसी क्रम में चंदनबाला के जीवन में घटी अनेक घटनाओं का वर्णन करते हुए उनके द्वारा हुए श्री वर्द्धमान मुनिराज के आहार/पारणा की कथा से भी आपका परिचय कराना चाहते हैं, इसके लिए आप आगामी कथा अवश्य पढ़ें।

केवलज्ञान की श्रद्धा के बल पर साधक को अहंकार और विषाद नहीं होता। भूतकाल बीत गया, उस काल में जो भी हुआ, वह वैसा ही होना था; ऐसा ही केवली के ज्ञान में झलका है। भविष्यकाल में भी जो होगा वह भी केवली के ज्ञान में वैसा ही ज्ञेयरूप में आया है। वर्तमानकाल जो सामने है, उसमें घट रही घटनाओं के हम मालिक न बनें; अपितु उन्हें कर्म का कार्य जानकर मात्र ज्ञाता-दृष्टा रहें।

जैन कथा संग्रह भाग-४/१२४

3

कर्मोदय की बिडम्बना में भी ज्ञान-वैराग्यशक्ति

एकबार चन्दना कुमारी अपनी सहेलियों के साथ नगर के बाहर उद्यान में क्रीड़ा कर रही थी कि उसके लावण्यमय यौवन से आकर्षित होकर एक विद्याधर ने उसका अपहरण कर लिया; परन्तु बाद में अपनी पत्नी के भय से उसने चन्दना को कौशाम्बी के वन में छोड़ दिया। कहाँ वैशाली और कहाँ कौशाम्बी का जंगल ! वन के भील सरदार ने उसे पकड़ लिया और एक वेश्या को सौंप दिया। एक के बाद एक होनेवाली इन घटनाओं से चन्दना व्याकुल हो गई कि अरे, यह क्या हो रहा है ?

....ऐसी अद्भुत सुन्दरी को देखकर वेश्या विचारने लगी कि कौशाम्बी के नागरिकों ने ऐसी रूपवती स्त्री कभी देखी नहीं है। इसे रूप के बाजार में बेचकर मैं अच्छा धन कमाऊँगी। – ऐसा सोचकर वह सती चन्दनबाला को वेश्याओं के बाजार में बेचने ले गई। अरे रे ! इस संसार में पुण्य-पाप की कैसी विचित्रता है कि एक सती नारी वेश्या के हाथों बिक रही है !

अहो ! देखो तो पुण्य-पाप के उदय की विचित्रता ! जहाँ की महारानी मृगावती स्वयं चन्दनबाला की बहिन है, उस कौशाम्बी के वेश्या बाजार में महावीर की मौसी चंदनबाला आज एक दासी के रूप में बिक रही है ! पर ज्ञानी तो ऐसे पुण्य-पाप के उदय में भी अपनी आत्मा को उनसे भिन्न रखकर सदा ज्ञानचेतना का ही अनुभव किया करते हैं।

प्रभु वीरकुमार के सानिध्य में चंदनबाला ने अपने ज्ञानस्वभाव का अनुभव किया था, उसके प्रताप से वे इस विपरीतता के समय में भी अपने को आत्मा/ज्ञाता अनुभव करते हुए एवं पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करते

हुए इस उदय के खेल को देखते हुए समताभाव धारण किये हुए थी। वेश्या आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही है कि कोई बड़ा ग्राहक आये तो उसे बेचकर धन कमा लूँ। इतने में एक बड़े सज्जन सेठ वहाँ से निकले। बाजार में खड़ी हुई चन्दना का रूप देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये। अरे, राजकुमारी समान यह कन्या यहाँ कैसे आई होगी ? जो दासी के रूप में बेची जा रही है। संकटग्रस्त होने पर भी आत्मतेज-सम्पन्न उसकी मुखमुद्रा से सेठ को ऐसा लगा कि यह अवश्य कोई संस्कारी कुलवान कन्या है; इसके मुख पर किंचित् विषय-लालसा नहीं है। फिर भी बीच बाजार में वेश्या के रूप में बिक रही है.... अवश्य ही इसमें कोई रहस्य होना चाहिये। इस कन्या को मैं इस संकट से बचा लूँ ताकि यह किन्हीं दुष्टों के चंगुल में न फँस जाए – ऐसा विचार करके सेठ उसके पास गये और पूछताछ करने लगे।

उन सज्जन सेठ को वहाँ देखकर नगरजनों के आश्चर्य का पार नहीं रहा !....अरे, नगर के यह महान श्रावक धर्मात्मा सेठ वृषभदत्त भी इसके सौन्दर्य पर मोहित हो गये, 'किन्तु यह असम्भव है !'....तो फिर किसलिये वे यहाँ आकर बात कर रहे हैं ? इसप्रकार लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार का कौतुहल फैल गया। सेठ वृषभदत्त निकट आकर चन्दना को देखने लगे। वह धीमे-धीमे कुछ बोल रही थी....उसके मुँह से निकलते हुए शब्द सुनकर सेठ एकदम चौंक पड़े....अरिहन्त....अरिहन्त....। अरे, यह तो 'णमोकार' मंत्र जप रही है....अवश्य ही यह कोई उच्च संस्कारी जैन कन्या है, जो ऐसे घोर संकट के समय नमस्कार मंत्र का जाप कर रही है। धन्य है इसे !....मेरे कोई सन्तान नहीं है, मैं इसे घर ले जाऊँगा और अपनी पुत्री के रूप में पालन करूँगा। ऐसा सोचकर सेठ ने उसे खरीद लेने का निश्चय किया और वेश्या को मुँहमांगी स्वर्ण मुद्राएँ देकर चन्दना को ले लिया। धन्य है उनका धर्म वात्सल्य।

घर में प्रवेश करते ही सेठ ने कहा – पुत्री ! तुम किसी उच्च कुल

की कन्या हो; तुम्हारी प्रत्येक चेष्टा, तुम्हारे निर्विकारी नेत्र और तुम्हारे वस्त्र, – यह सब तुम्हारी कुलीनता का परिचय देते हैं। बेटी, तुम निर्भय होकर रहो। मैं जिन-तीर्थंकर देव का अनुयायी जैन श्रावक हूँ....आज से तुम मेरी धर्मपुत्री हो और मैं तुम्हारा धर्मपिता।

दासी के रूप में बिक कर भी स्वयं एक सज्जन जैन श्रावक के घर में आ गई हूँ, यह जानकर चन्दना को सन्तोष हुआ; उसे इतनी प्रसन्नता हुई मानों वह महावीर की मंगल छाया में ही आ गई हो !....उसका हृदय पुकार उठा – 'जैनधर्म से रहित चक्रवर्ती पद भी अच्छा नही है; भले ही दासीपना हो परन्तु जैनधर्म में वास हो तो वह भी अच्छा है; – ऐसी कठिन परिस्थिति में भी उसे वीरकुमार के साथ हुई धर्मचर्चा का स्मरण हुआ और वह अपूर्व क्षण याद आया, जब उसने वीरकुमार के मार्गदर्शन में स्वयं निर्विकल्प आत्मानुभूति पूर्वक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था। अनुकूल या प्रतिकूल प्रसंगों में घिर जाने से आत्मा को भूल जाये वह ऐसी कोई साधारण स्त्री नहीं है, वह तो चैतन्यतत्त्व की ज्ञाता, मोक्ष की साधक है। ऐसी प्रतिकूलता में भी ज्ञानचेतना किंचित् चिगती नहीं है, पृथक् की पृथक् ही रहती है। राजपुत्रीपना या दासीपना, सत्कार या तिरस्कार, इन सबसे चन्दना के चैतन्य की प्रभा भिन्न की भिन्न रहती है। वाह चन्दना !....धन्य है तुम्हारी चैतन्यप्रभा !

'वाह रे उदय ! एक मुमुक्षु धर्मात्मा राजकुमारी वर्तमान में दासी बनकर पराये घर में निवास कर रही है। सेठ-सेठानी को पता नहीं है कि यह दासी कौन है ? अरे, यह दासी तो जगत् के परमेश्वर की मौसी है, धर्म का एक रत्न है, भारत के श्राविका संघ की शिरोमणि है और कौशाम्बी नगरी की महारानी मृगावती की लाड़ली बहिन है ! जो वर्तमान में कर्मोदयवश दासी बनी हुई है; तथापि पुण्य का ऐसा कोई योग है कि दासीपना भी सेठ वृषभदत्त जैसे एक सज्जन-धर्मात्मा के घर में मिला है....जहाँ शीलधर्म की रक्षा सुगम है।

परन्तु अरे उदय ! चन्दना के सौन्दर्य को देखकर सेठानी को सन्देह हुआ कि मेरी कोई संतान न होने से सेठ अवश्य मुझे छोड़कर इस चन्दना को मेरी सौत बनाएँगे ! नहीं तो इस घर में दास-दासियों की क्या कमी थी ? जो इसे ले आये। सती चन्दना सबकुछ जानते हुए भी धैर्यपूर्वक सहन करती है; सेठानी के प्रति हृदय में द्वेषभाव भी नहीं आने देती। वीरनाथ के बतलाये हुए चैतन्यतत्त्व का विचार करने से दासीपने के दु:ख का विस्मरण हो जाता है। वह संसार से विरक्त होकर चिन्तन करती है कि मैं तो चैतन्य की महान स्वाधीन विभूति से भरपूर हूँ, यह सब तो पूर्व कर्मों से छूटने की चेष्टा है। प्रभु महावीर के प्रताप से मेरी ज्ञानचेतना अब कर्मों से पृथक् रहकर मोक्षमार्ग को साधती रहती है...।

एक दिन सेठ वृषभदत्त बाहर से थके हुए घर आये। सेठानी कहीं बाहर गई थी, कोई नौकर-चाकर भी घर में नहीं थे; इसलिये सदा की भाँति चन्दना पानी ले आयी और पितातुल्य सेठजी के पाँव धोने लगी। पाँव धोते-धोते उसके कोमल केशों का जूड़ा खुल गया और केश धूलधूसरित होने लगे; इसलिये सेठ ने निर्दोषभाव से वात्सल्यपूर्वक पुत्री के केश हाथ से ऊपर उठा लिये। ठीक उसी समय सुभद्रा सेठानी आ पहुँची और चन्दना के खुबसूरत केशों को सेठ के हाथ में देखकर क्रोध से आग बबूला हो गई, उसे लगा कि मेरी अनुपस्थिति में ये दोनों एक-दूसरे से प्रेमालाप कर रहे थे। बस, उसकी शंका निर्णय में बदल गई और उसने निश्चय कर लिया कि किसी भी प्रकार चन्दना को घर से निकालना है....रे दैव ! तेरे भण्डार में क्या-क्या भरा है ?

जिज्ञासु पाठको ! तुम निराश मत होना। कर्मोदय की तथा धर्मी जीव के परिणामों की विचित्रता देखो ! यह कर्मोदय भी चन्दना के लिये वरदानरूप बन जाता है....कैसे ? यदि यह जानने की इच्छा हो तो आगामी कहानी पढ़िये।

4

श्री वर्द्धमानमुनि का सती चंदना द्वारा पारणा

कर्मोदयानुसार चंदनबाला सेठ वृषभदत्त के घर तक अपने शील सतीत्व को सुरक्षित लिए हुए आ तो गई, पर कौन जानता था कि यहाँ ही उस पर शील भंग करने का आरोप लगाया जायेगा और वही उसे वरदान स्वरूप सिद्ध होगा। वह तो सदा इन सबसे भिन्न अपने स्वरूप की आराधना में ही तत्पर रहती है, वह विचारती है कि "कर्मोदय से व्याकुल हो जाना वह धर्मी जीवों का काम नहीं है;....उस समय भी अपनी धर्मसाधना में आगे बढ़ते रहना ही धर्मात्माओं की पहिचान है। वे जानते हैं कि –

जो कर्म के ही विविध उदय विपाक जिनवर ने कहे,
वे मम स्वभाव नहीं तथा मैं एक ज्ञायक भाव हूँ।
सब जीव में समता मुझे नहिं बैर किसी के संग मुझे,
इसलिए आशा छोड़कर मैं करूँ प्राप्ति समाधि की॥"

जब सुभद्रा सेठानी का संशय निर्णय में बदल गया तब वह चंदना के कर्म से प्रेरी सेठानी उसे किसी भी तरह अपने रास्ते से हटाने को तत्पर रहती हुई अवसर का इंतजार करने लगी। एक दिन जब सेठ नगर से बाहर गये हुए थे, तब सेठानी ने चन्दना को एकान्त में बुलाकर उसके सुन्दर केश काटकर सिर मुड़वा दिया। अरे, अत्यन्त रूपवती राजपुत्री को कुरूप बना देने का प्रयत्न किया....इतने से उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ तो चन्दना के हाथ-पाँव में बेड़ियाँ डालकर उसे एक अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया, ऊपर से तरह-तरह के कटु वचन कहे; भोजन में भी प्रतिदिन सुबह-सुबह मात्र उबले हुए उड़द और गरम पानी दिया। अरे, सिर मुडवाकर जिसे बेड़ी पहिना दी गई हो उस सुकोमल निर्दोष स्वानुभवी

राजकुमारी का उस समय क्या हाल होगा ? आँखों से आँसू बह रहे हैं; मन में वीरनाथ प्रभु का स्मरण होता है। उसे विश्वास है कि महावीर मुझे संकट से उबारने अवश्य आयेंगे....जिन महावीर ने मुझे सम्यक्त्व देकर भव बन्धन से मुक्त किया है, वे ही प्रभु मुझे दर्शन देकर इन बेड़ियों से भी छुड़ायेंगे। इसप्रकार वीर प्रभु के स्मरण में लीन होकर वह भूख-प्यास को भी भूल जाती है,....क्षणभर तो उसका आत्मा मुक्तरूप से किसी देहातीत अगम्यभाव में निमग्न हो जाता था।

ऐसी स्थिति में एक दिन बीता....रात बीती....दूसरा दिन भी बीत गया....सेठ वृषभदत्त नहीं आये ! तीसरा दिन बीत गया....तब भी सेठ जी नहीं आये....चन्दना को तीन दिन के उपवास हो गये....तीन दिन तक कोठरी में बन्द और बेड़ियों में जकड़ी हुई वह राजकुमारी आहार-जल के बिना एकाकी पड़ी है और कड़वे-मीठे संस्मरणों में खो गई है, प्रतिक्षण प्रभु महावीर का स्मरण करते हुए सम्यक्त्व का मधुर स्वाद ले-लेकर जी रही है। सोच रही है कि या तो अब प्रभु के दर्शन हों या समाधिमरण....।

इसप्रकार विचार करते-करते तथा प्रभु के दर्शनों की भावना भाते-भाते तीन दिन बीत गये....चौथे दिन प्रात:काल सेठ आ गये। घर का वातावरण कुछ सूना-सूना बेचैन-सा लग रहा था; चन्दना कहीं दिखायी नहीं दी; इसलिये बुलाया, 'चन्दना....बेटी चन्दना ! किन्तु कहीं से उत्तर न पाकर सेठ चिन्ता में पड़ गये; उनके मन में तरह-तरह की शंकाएँ होने लगीं....अरे, चन्दना कहाँ गई ? वह निर्दोष कन्या कोई अशुभ कार्य तो कर नहीं सकती। मुझसे या सुभद्रा से पूछे बिना वह कहीं जा भी नहीं सकती।....तो फिर हुआ क्या ? कहाँ गई वह ?.... सेठानी से पूछा तो कहती है – मैं कुछ नहीं जानती, दास-दासियों को भी कुछ पता नहीं; वे कुछ बोलते भी नहीं हैं....सेठ व्याकुल हो गये। प्राणों से भी

प्रिय पुत्री कहाँ गई ? अन्त में उदास होकर एक वृद्ध दासी से पूछा – बहिन, तुम्हें मालूम है चन्दना कहाँ है ? तुम सब उदास क्यों हो ? कुछ बोलते क्यों नहीं ? दासी ने कोई उत्तर तो नहीं दिया, परन्तु सेठ की ओर देखकर सिसकने लगी। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे....एक गहरा नि:श्वास छोड़कर कोठरी की ओर संकेत करके वह चली गई।

सेठ ने तुरन्त कोठरी की खिड़की के पास जाकर देखा तो भीतर चन्दना दिखाई दी....बाहर से ताला लगा हुआ था। चन्दना का मुड़ा हुआ सिर और हाथ-पाँव में पड़ी हुई बेड़ियों को देखकर सेठ से रहा नहीं गया....वे करुण चीत्कार कर उठे – अरे बेटी चन्दना! तेरी यह दशा! और फिर भी मुँह से आह तक नहीं करती ? अरे, किस दुष्ट ने तेरी यह दशा की है ?

चन्दना कुछ बोली नहीं, मात्र स्नेहपूर्ण नेत्रों से सेठजी की ओर देखती रही....मानों उसके अमृत झरते नेत्र उनसे शान्त भाव रखने को कह रहे हों।

सेठजी ने तुरन्त कोठरी का द्वार खोलने और बेड़ियाँ काटने के लिये स्वयं ही लुहार को बुलाने दौड़े।

सेठजी के आने से तीन दिन की उपवासी चन्दना विचारने लगी – यदि महावीर प्रभु पधारें तो मैं उन्हें आहार देकर ही पारणा करूँगी। – ऐसी अन्तरंग भावना भा रही है और यदि जीव की भावना सच्ची हो तो उसका फल भी मिले बिना नहीं रहता....**यदि जीव को भावना का फल न मिले तो सारा जगत शून्य हो जाए। जिसे आत्मा की भावना हो उसे आत्मा की प्राप्ति होती ही है। सच्ची आत्मभावना भाने वाले को यदि आत्मसुख की प्राप्ति न हो तो आत्मतत्त्व ही शून्य हो जाए, उसका अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो। यदि पापी जीव के पापभाव का फल न हो तो नरकगति ही शून्य हो जाए; जीव**

के पुण्यभाव का फल न हो तो जगत में देवगति ही शून्य हो जाए; जीव के रत्नत्रयभाव का फल न हो तो सिद्धगति ही शून्य हो जाए। इसप्रकार यदि जीव के शुभ-अशुभ या शुद्ध भावों का फल न हो तो संसार की चार गतियाँ अथवा सिद्धगति ही नहीं रहेगी और तब जगत को शून्य हो जाना पड़ेगा; किन्तु नहीं, सच्ची भावना का सच्चा फल आता ही है....भावना फलित हुए बिना नहीं रहती। देखो, इधर चन्दना उत्तम भावनाएँ भा रही हैं....कि वीर प्रभु पधारें....तो आहारदान दूँ...ठीक उसी समय – प्रभु महावीर पधारे।

पाँच माह और पच्चीस दिन के उपवासी प्रभु महावीर आहार हेतु नगर में पधारे हैं। उनका शरीर दुर्बल नहीं हुआ, उनकी मुद्रा निस्तेज नहीं हुई; उलटी तप के दिव्य तेज से चमक रही है; उनके चैतन्य का प्रतपन अनोखा है ! ऐसे प्रभु वीर मुनिराज वृषभदत्त सेठ के घर की ओर आ रहे हैं....चन्दना ने दूर से प्रभु को अपने घर की ओर आते देखा तो उसका रोम-रोम, प्रदेश-प्रदेश हर्षातिरेक से....भक्ति से तथा आश्चर्य से पुलकित हो उठा.... 'पधारो प्रभु पधारो !' प्रभु निकट आये और हर्षविभोर चन्दना प्रभु के सत्कार के लिये आगे बढ़ी....आश्चर्य ! उसकी बेड़ियाँ खुल गईं, उसका रूप सौन्दर्य इतना उत्कृष्ट लगने लगा मानों सिर भी पूर्ववत् सुन्दर केशों से सुशोभित हो रहा हो –

भा रही थी भावना, आहार देने के लिये....।
बेड़ियाँ तब खुल गईं, प्रभु वीर के शुभ दर्श से।।

सारा वातावरण एकदम बदल गया। बन्धन मुक्त चन्दना का लक्ष्य तो प्रभु की ओर था। बन्धन था और टूट गया, उसका भी लक्ष्य उसे नहीं है....जिसप्रकार स्वानुभूति के काल में मुमुक्षु साधक को बन्ध-मोक्ष का लक्ष्य नहीं रहता, तथापि बन्धन टूट जाते हैं; आत्मदर्शन में लीन साधक के मोह बन्धन अचानक ही खुल जाते हैं.... उसीप्रकार प्रभु-

दर्शन में लीन चन्दना की बेड़ी का बन्धन टूट गया....आनन्दपूर्वक वह द्वार पर आयी; प्रभु की परमभक्ति सहित वन्दना करके पड़गाहन किया – अहो प्रभो ! पधारो.... पधारो.... पधारो....!

वीर प्रभु की मधुर दृष्टि चन्दना पर पड़ी....तो वह कृतार्थ हो गई, 'लोग मुझे नहीं पहिचानते, किन्तु प्रभु महावीर तो जानते हैं ?' प्रभु के

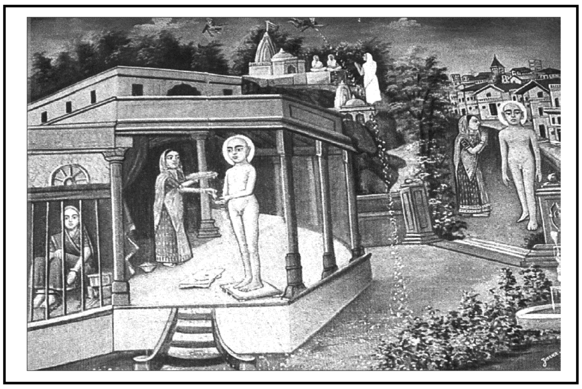

दर्शनों से वह जीवन के सर्व दु:ख भूल गई....भक्तिपूर्वक वीर मुनिराज का पड़गाहन किया।

...क्षणभर के लिये प्रभु वहाँ ठहरे .... और देखा.... तो दासी के रूप में तीन दिन की उपवासी चन्दना आहारदान देने हेतु खड़ी है....दूसरे भी अनेक अभिग्रह पूरे हो गये....और १७५ दिन के उपवासी तीर्थंकर मुनिराज ने चन्दना के हाथ से पारणा किया।

ज्यों ही चन्दना ने प्रभु के हाथ में उड़द का प्रथम ग्रास रखा कि दाता और पात्र दोनों के दैवी पुण्यप्रभाव से उसका उत्तम खीररूप परिणमन हो गया ! उत्तम खीर से विधिपूर्वक प्रभु का पारणा होने से चारों ओर आनन्द मंगल छा गया; देवगण आकाश में जय-जयकार करने लगे और रत्नवृष्टि होने लगी; देवदुंदुभी बज उठी....समस्त कौशाम्बी नगरी में हर्ष एवं आश्चर्य फैल गया कि – अरे, यह काहे का उत्सव है ?....और जब उन्होंने जाना कि आज वीर मुनिराज का पारणा हो गया है और उसी के हर्षोपलक्ष्य में देवगण यह महोत्सव कर रहे हैं....तब नगरजनों के आनन्द का पार नहीं रहा।

मुनिराज महावीर प्रतिदिन नगरी में पधारते और बिना आहार किये लौट जाते....उन प्रभु ने आज आहार ग्रहण किया....नगरी में यह समाचार फैलते ही लोग हर्ष से दौड़ते हुए उधर आने लगे कि चलो, उस भाग्यशाली आत्मा के दर्शन करें और अभिनन्दन करें....जिसके हाथ से यह महान कार्य हुआ है। लोगों ने जब देखा कि वृषभदत्त सेठ की एक दासी के हाथ से प्रभु ने आहार लिया है, तब वे आश्चर्यचकित हो गये....अरे, लोगों को क्या खबर थी कि वह दासी नहीं किन्तु प्रभु महावीर की मौसी है....उनकी श्रेष्ठ उपासिका है....प्रभु को पारणा कराके चन्दना धन्य हो गई। ....आहार ग्रहण करके वे वीर योगिराज तो मानों कुछ भी नहीं हुआ हो – ऐसे सहजभाव से वन की ओर गमन कर गये और वहाँ जाकर आत्मध्यान में लीन हो गये। जबतक प्रभु जाते हुए दिखाई दिये, तबतक चन्दना उन्हें टकटकी बाँधे देखती रही....आकाश में देव और पृथ्वी पर जनसमूह उसे धन्यवाद देकर उसकी प्रशंसा कर रहे थे....किन्तु चन्दना तो सारे जगत को भूलकर, समस्त परभावों से परे, चैतन्यतत्त्व के निर्विकल्प ध्यान में शान्तिपूर्वक बैठी थी....उसकी गम्भीरता अद्भुत थी।

इधर वृषभदत्त सेठ के घर में मुनिराज के आहारदान का प्रसंग बनने से आनन्द-मंगल छाया हुआ है.... उधर सेठ स्वयं तो बेड़ी कटवाने हेतु लुहार को बुलाने गये थे सो वापिस लौट रहे हैं....मार्ग में आनन्दमय कोलाहल देखकर लोगों से पूछा – यह क्या हो रहा है ? किस बात का है इतना हर्षमय कोलाहल ?

तब प्रजाजन कहने लगे – अरे सेठ ! आपके तो भाग्य ही खुल गये ....आपके आँगन में तो महावीर मुनिराज का पारणा हुआ है ! पाँच माह और पच्चीस दिन के उपवास पश्चात् पारणे का धन्य अवसर आपको प्राप्त हुआ है। आपके गृह-आँगन में चन्दना ने भगवान को आहारदान दिया है....उसी का यह उत्सव हो रहा है....देव भी आपके आँगन में रत्नवृष्टि एवं जय-जयकार कर रहे हैं।

सेठ तो आश्चर्यचकित होकर घर की ओर दौड़े...हर्षानन्द का स्वयंभूरमण समुद्र उनके हृदय में उछलने लगा....क्या हुआ ? कैसे हुआ ? चन्दना की बेड़ी किसने काटी ? उसने प्रभु को काहे से किसप्रकार पारणा कराया ? ऐसे अनेक प्रश्न हर्ष के समुद्र में डूब गये....वे घर पहुँचे तो वहाँ सारा वातावरण ही बदल गया था। कहाँ कुछ क्षण पूर्व का अशांत क्लेशमय वातावरण और कहाँ यह उल्लासपूर्ण आनन्द ! चन्दना का अद्भुत रूप पहले से भी अधिक सुन्दर देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये और हर्ष से बोल उठे – वाह बेटी चन्दना ! धन्य है तू ! तूने मेरा घर पावन किया....कौशाम्बी नगरी की शोभा बढ़ा दी....तुझे पाकर मैं धन्य हो गया....तू तो देवी है....अरे रे, हम तुझे नहीं पहचान सके और अभी तक दासी बनाकर रखा। बेटी, हमारा अपराध क्षमा कर दे, तू दासी नहीं है, तू तो जगत्पूज्य माता है।

चन्दना बोली – पिताजी, वह बात भूल जाइये....मुझ पर आपका महान उपकार है....आपने ही मुझे संकट में, शरण देकर मेरी रक्षा की है। – यह आश्चर्यमय घटना देखकर सुभद्रा सेठानी तो दिग्मूढ़ बन गई....उसके पश्चाताप की कोई सीमा नहीं थी; वह चन्दना के चरणों में गिरकर क्षमायाचना करने लगी – बेटी, मैं तुझे नहीं पहिचान सकी, मुझ पापिन ने तुझे बहुत कष्ट दिये....मुझे क्षमा कर दे बेटी।

चन्दना ने उसका हाथ पकड़कर कहा माता ! वह सब भूल जाओ, मेरे ही कर्मोदय से वह सब हुआ; परन्तु प्रभु महावीर के मंगल-पदार्पण से आपका घर पावन हो गया और हम सब धन्य हुए ! मानों महावीर का अभिग्रह पूर्ण होने के लिये ही यह सब हुआ था।

आत्म-मंथन करती हुई चन्दना विचार रही है कि अहा ! एक आहारदान की भावना से मेरी बेड़ी के बन्धन टूट गये.... तो परम चैतन्य की निर्विकल्प भावना से भव के बन्धन टूट जाएँ इसमें क्या आश्चर्य? आत्मभावना द्वारा मैं अपने भव बन्धन को भी अल्पकाल में अवश्य ही

तोड़ डालूँगी। महावीर प्रभु के दर्शन मात्र से मेरे बाह्य बन्धन छूट गये तो अन्तर में चैतन्य प्रभु के दर्शन से भवबन्धन भी टूटने में अब क्या विलम्ब ?

सारी कौशाम्बी नगरी उमड़ पड़ी है महावीर मुनि को पारणा करानेवाली उन चन्दना देवी के दर्शन करने तथा उन्हें अभिनन्दन देने को। अहा, आज तक जिसे हम दासी समझते थे वह तो भगवती देवी निकली। उन्होंने वीर प्रभु को पारणा कराके अपनी कौशम्बी नगरी का सम्मान बढ़ाया और उसे विश्व प्रसिद्ध कर दिया। अपनी नगरी में वीर प्रभु का आहार नहीं होने का जो कलंक लग रहा था उसे आज चन्दना ने आहारदान देकर मिटा दिया। बहुतों को तो आश्चर्य हो रहा था कि आहारदान और किसी के हाथ से नहीं, एक दासी के हाथ से हुआ।

अरे नगरजनो ! कलंक तो तुम्हारी नगरी में चन्दना जैसी सती दासीरूप में बिकी उसका था....प्रभु महावीर ने उस दासी के ही हाथ से पारणा करके वह कलंक मिटा दिया।....दासी प्रथा दूर कर दी....मनुष्य, मनुष्य को बेचे वह कलंक धो दिया; तथा यह भी प्रचारित किया कि धर्मसाधना में धनवान होने का कोई महत्त्व नहीं है....सद्गुणों का महत्त्व है।

महावीर मुनि के आहार के समाचार सुनकर कौशाम्बी की महारानी मृगावती भी वहाँ आ पहुँचीं और उन्हें यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि मुनिराज का पारणा उनकी बहिन चंदना के ही द्वारा हुआ है। फिर वे सेठ वृषभदत्त का धन्यवाद कर बहिन चंदना को अपने घर ले गईं। फिर क्या हुआ – यह जानने के लिए आगामी कथा का वांचन करें।

परेशानियों से बचने के लिए दुर्जनों और भौतिक साधनों का आश्रय लेना ऐसा है, जैसे सुरक्षा के लिए चूहा, बिल्ली की शरण ले। – ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

5

श्री महावीर स्वामी को केवलज्ञान और सती चंदनबाला की दीक्षा

श्री महावीर मुनिराज आज मोह को सम्पूर्णतया परास्त करने के लिये वीर योद्धा की तरह ध्यान खड्ग लिए हुए खड़े हैं....वीर राजा का महावीरपना आज सचमुच पूरी तरह जागृत हो उठा है; क्षायिक सम्यक्त्व उनकी सेना का सेनापति है और अनन्तगुणों की विशुद्धिरूप सेना शुक्लध्यान के श्रेणीरूप बाणों की वर्षा कर रही है; अनन्त आत्मवीर्य उल्लसित हो रहा है और अनन्त सिद्ध भगवन्त उनके पक्ष में आ मिले हैं। केवलज्ञानलक्ष्मी विजय माला लेकर तैयार खड़ी है और मोह की समस्त सेना प्रतिक्षण घट रही है। अरे, देखो....देखो ! प्रभु तो शुद्धोपयोगरूप चक्र की धार से मोह का नाश करने लगे हैं, क्षपकश्रेणी में आगे बढ़ते-बढ़ते आठवें....नौवें....दशवें गुणस्थान तक तो क्षणमात्र में पहुँच गये हैं। प्रभु अब सर्वथा वीतरागी हो गये....और सूर्यास्त से पूर्व तो वीरप्रभु के अन्तर में जो कभी अस्त न हो ऐसा केवलज्ञान सूर्य जगमगा उठा....अहा ! प्रभु महावीर सर्वज्ञ हुए....अरिहन्त हुए.... परमात्मा हुए....'णमो अरिहंताणं।'

सर्वज्ञ प्रभु महावीर राग और इन्द्रियों के बिना ही परिपूर्ण सुख और ज्ञानरूप परिणमित हुए। अभूतपूर्व थी वह दशा ! इन्द्रियाँ विद्यमान होने पर भी मानों अविद्यमान हों – इसप्रकार प्रभु ने उनका सम्बन्ध सर्वथा छोड़ दिया। 'भगवान भले अतीन्द्रिय हुए और हमारा साथ छोड़ दिया, फिर भी हमें प्रभु के साथ रहने में ही लाभ है' ऐसा मानकर वे जड़ इन्द्रियाँ अभी प्रभु का साथ नहीं छोड़ती थीं। प्रभु तो इन्द्रियों से निरपेक्ष रहकर

स्वयमेव सुखी थे। पराधीन इन्द्रियसुख से ठगे जा रहे जगत को प्रभु ने बतला दिया कि आत्मा इन्द्रिय विषयों के बिना ही स्वाधीनरूप से सुखी है; सुख वह आत्मा का स्वभाव है, इन्द्रियों का नहीं।' शुद्धोपयोग के प्रभाव से आत्मा स्वयं परम सुखरूप परिणमता है।

ऐसे सर्वप्रकार से निर्दोष और अनंत सुखी परमात्मा के दर्शन कर निकटभव्य जीव तो यह सहज ही समझ लेते हैं कि ऐसा कोई दोष या दुःख नहीं है, जो स्वभाव की आराधना से दूर न हो। हमें भी यही समझ लेना चाहिए।

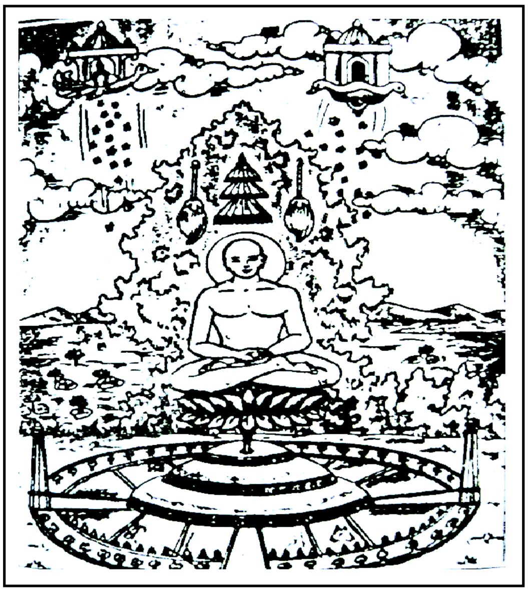

इन्द्रियातीत तथा लोकोत्तम ऐसे वे वीर भगवान केवलज्ञान होते ही पृथ्वी से ५००० धनुष ऊपर अन्तरिक्ष में विराजमान हुए। अहा, पृथ्वी के अवलम्बन की अब उन्हें जरूरत ही नहीं रही और अब वे फिर कभी पृथ्वी पर नहीं उतरेंगे। उनका शरीर छायारहित परम औदारिक हो गया; सबको देखनेवाले प्रभु स्वयं भी सर्व दिशाओं से दिखने लगे। प्रभु के केवलज्ञान का महोत्सव करने तथा अरिहन्त पद की पूजा करने स्वर्ग से इन्द्रादि देव पृथ्वी पर आ पहुँचे। इन्द्र ने स्तुति करते हुए कहा – हे देव ! आप वीतरागता एवं सर्वज्ञता द्वारा जगत में सर्वोत्कृष्ट सुन्दरता को प्राप्त हुए हैं; आप परम इष्ट हैं।

इधर कौशाम्बी नगरी में कुमारी चन्दनबाला वीर प्रभु के केवलज्ञान

की प्रतीक्षा करते हुए वैराग्यमय जीवन बिता रही है। बैशाख शुक्ला दशमी के सायंकाल आकाश में अचानक हजारों-लाखों देव-विमान देखकर उसे आश्चर्य हुआ....वे सभी महावीर भगवान का जय-जयकार करते हुए जा रहे थे। चन्दना तुरन्त समझ गई कि महावीर को केवलज्ञान हो गया है...और उसी का उत्सव मनाने यह देवगण जा रहे हैं। अहा! महावीर अब परमात्मा बन गये ! इसप्रकार चन्दना के हर्षानन्द का पार नहीं है। सारे नगर में आनन्द के बाजे बजवाकर उसने प्रभु के केवलज्ञान का मंगल उत्सव मनाया। पश्चात् बड़ी बहिन मृगावती को साथ लेकर वह राजगृही – वीर प्रभु के समवसरण पहुँची....और उन वीतरागी वीर परमात्मा को देखकर स्तब्ध रह गई। राजकुमार महावीर ने जो आत्मानुभूति प्राप्त कराई थी, उसका उसे स्मरण हुआ और तुरन्त वैसी अनुभूति में पुनः पुनः उपयोग लगाकर अन्तर की विशुद्धता को बढ़ाया।

प्रभु की स्तुति की, वहाँ विराजमान मुनिवरों को वन्दन किया और प्रभु चरणों में आर्यिका के व्रत धारण किये....कोमल केशों का लोंच किया, और अन्तर के वैराग्य से बाहर श्वेत परिधान में भी वह सुशोभित हो उठी, अब राजसी परिधानों का क्या काम ? अभी कुछ दिन पूर्व भी सिर मुडाए बन्धन में पड़ी थी....और आज स्वेच्छा से सिर मूडकर वह मोक्षमार्ग में प्रयाण कर रही है।

कहाँ वह कारागृह और कहाँ यह समवसरण – धर्मसभा ! उन दोनों संयोगों से विभक्त तथा निजगुणों से एकत्व – ऐसे निजस्वरूप का वह अनुभवन करती थी। वीर प्रभु की धर्मसभा में विद्यमान ३६००० आर्यिकाओं के संघ की वे चन्दनामाता अधिष्ठात्री थीं। कहाँ विद्याधर द्वारा अपहरण और कहाँ वीर प्रभु की शरण ! कहाँ वेश्या के हाथों बाजार में बिकने का प्रसंग और कहाँ ३६००० आर्यिकाओं में अधिष्ठात्री-पद! वाह रे उदयभाव तेरा खेल ! परन्तु धर्मात्मा का चैतन्यभाव अब तेरे विचित्र जाल में नहीं फँसेगा, वह तो सर्व प्रसंगों में तुझसे अलिप्त अपने चैतन्यभाव में ही रहेगा....और मोक्ष को साधेगा।

एकबार प्रभु महावीर राजगृही के वैभारगिरि पर पधारे। परमात्मा महावीर को और साथ में अपनी लाड़ली बहिन चन्दना को देखकर महारानी चेलना के आनन्द का पार नहीं रहा। महाराजा श्रेणिक भी साथ थे। सर्वज्ञ महावीर को देखकर वे भी स्तब्ध रह गये। वाह ! मेरे इष्टदेव ! धन्य आपकी वीतरागता ! धन्य आपका अचिन्त्य धर्मवैभव!

तीर्थंकर भगवान महावीर की धर्मसभा समवसरण में बैठे राजा श्रेणिक के चित्त में एक शंका हुई कि चंदनबाला को इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ा ? यदि आपके चित्त में भी इसका समाधान जानने की जिज्ञासा हो तो अगली कहानी अवश्य पढ़ें।

बाहर में मस्तक भले ही अग्नि में जल रहा हो, परन्तु अंदर आत्मा तो चैतन्य के परम शांतरस से ओतप्रोत है। शरीर जल रहा है फिर भी आत्मा स्थिर है, क्योंकि दोनों भिन्न हैं। जड़ और चेतन के भेदविज्ञान द्वारा चैतन्य की शांति में स्थित होकर घोर परिषह सहनेवाले मुनिराज, अत्यन्त शूरवीर गजकुमार ने, जिस दिन दीक्षा ली, उसी दिन शुक्लध्यान के द्वारा कर्मों को भस्म कर केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया ? ''अंत:कृत'' केवली हुए, उनके केवलज्ञान और निर्वाण दोनों ही महोत्सव देवों ने एक साथ मनाये। **– गजकुमार कथा से साभार**

6

महासती चंदनबाला : पूर्वभवावलोकन

(फल तो मिलता ही है पर अज्ञानी भोगता है और ज्ञानी जानता है)

क्या आपको पता है ? कि महासती चंदनबाला महावीर स्वामी की मौसी, बचपन से ही धार्मिक संस्कारों में पली–बड़ी, जीवन शुद्ध सात्विक एवं पवित्र, सच्चे देव–शास्त्र–गुरु की आराधक; फिर भी इतना महान संकट, कष्ट एवं कलंक लगने का कारण कौन है ?

इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हम सती चंदनबाला के पूर्व भवों का अवलोकन करते हैं क्योंकि बिना उदय के कुछ भी नहीं होता और उदय तब ही होता है, जब बंध किया हो तथा बंध परिणामों/भावों के अनुसार होता है तो देखते हैं कि किन परिणामों के कारण ऐसे कर्म का बंध हुआ था चंदनबाला को, जो अनेक भवों के बाद उदय में आकर उन्हें कष्ट देने का निमित्त कारण बना।

तीन भव पूर्व चंदनबाला श्री सोमशर्मा की सोमिला नाम की पुत्री थी, तब उसका विवाह शिवभूति नामक एक युवक से हुआ था, उसकी एक ननद थी, जिसका नाम चित्रसेना था। योग्य समय में चित्रसेना का श्री देवशर्मा ब्राह्मण से विवाह हो गया; परन्तु कुछ समय पश्चात् चित्रसेना के पति की मृत्यु हो गई, तब बहिन चित्रसेना को शिवभूति सहायता हेतु अपने घर ले आया। यह बात सोमिला को पसंद नहीं आई, अतः वह उसे परेशान करने लगी, फिर भी जब चित्रसेना उसके

घर में ही रहती रही, तब उसने ''अपने पति शिवभूति व चित्रसेना के परस्पर कुत्सित संबंध हैं'' – ऐसा झूठा आरोप लगाकर उसे कलंकित करने का निकृष्ट पाप किया था; बस! इस निकृष्ट परिणाम से उसे ऐसा कर्मबंध हुआ कि तीन भव बाद भी उसे इसका इतना भयंकर दुःख भोगने का योग बना, पर बाहर में योग तो बना, लेकिन अन्तरोन्मुखी वृत्ति की धनी चंदनबाला उससे न जुड़कर स्वभाव से जुड़ने का ही प्रबल पुरुषार्थ करती रही और इस पर्याय को पूर्णकर अच्युत स्वर्ग में देव हुई। तभी चित्रसेना ने भी निदान किया था कि मैं भी अवसर पाकर इसे इसीप्रकार कलंक लगाऊँगी।

अरे रे ! यह जीव उत्कृष्ट मनुष्य पर्याय, सर्व सुविधा युक्त जीवन पाकर भी मात्र राग-द्वेष करके उसे व्यर्थ ही बर्बाद कर देता है। चित्रसेना ने यह विचार तो किया कि मैं भी इस पर कलंक लगाऊँगी, पर यह विचार नहीं किया कि अरे ! प्रथम तो मेरे तीव्र पाप का उदय न होता तो मुझे पति का वियोग ही क्यों होता ? अथवा मुझे इतना पराधीन जीवन क्यों जीना पड़ता। मैं तो भाभी को कुछ कष्ट देती नहीं हूँ, फिर भी भाभी मुझे कष्ट का कारण मानती है, वास्तव में इसीप्रकार भाभी भी मुझे कलंक लगाकर स्वयं ही कर्म बंधन कर रही है और मेरे कर्मों का उदय उसमें प्रबल कारण है, अतः मुझे समताभाव पूर्वक इस समय को आराधना में लगाना चाहिए।

अरे ! जिसप्रकार मैं यह जान रही हूँ कि भाभी ने मुझ पर कलंक लगाया है और यह कर्म के उदय के कारण ही लगाया जा रहा है। उसीप्रकार मैं यह भी तो जान सकती हूँ कि ये भाभी तथा कर्म का उदय मुझसे भिन्न हैं।

वास्तव में हम कहते हैं कि हमें कोई कठोर बात सहन नहीं होती, परन्तु सच्चाई यह है कि बात कठोर नहीं होती, हमारा विचार विपरीत होता है, अतः हमें कठोर लगती है। अरे ! जिन सुकुमाल

को सरसों का दाना भी चुभता था, सहन नहीं होता था, फिर उन्हें स्यालनी का भखना कैसे सहन हो गया?

चित्रसेना ने अपने को संयोगों और कर्मोदय से भिन्न न जानकर सोमिला भाभी से बदला लेने का निदान बंध कर लिया।

इधर सोमिला को उसके पति शिवभूति ने बहुत डाटा फटकारा, अपनी नाराजगी व्यक्त थी, पर उसने उसे समझाकर शांत कर दिया।

कालान्तर में इन तीनों जीवों की भवान्तर की यात्रा आरम्भ हुई। जिसमें सोमिला और शिवभूति तो प्रायः परस्पर मिलते रहे, पर चित्रसेना के बीच के भवों का विशेष वर्णन नहीं मिलता।

सोमिला क्रमशः कनकलता, पद्मलता के भव पूरे कर राजा चेटक की सातवीं पुत्री चंदनबाला हुई। (इनके भवों की विशेष जानकारी के लिए उत्तरपुराण, सर्ग-75, श्लोक 75 से 182 देखें।)

शिवभूति क्रमशः महाबल, नागदत्त और अंत में मनोवेग विद्याधर हुआ। जब शिवभूति, मनोवेग के भव में था और सोमिला चंदनबाला के भव में थी, तभी चित्रसेना कौशाम्बी नगर श्रेष्ठी वृषभसेन की भार्या सुभद्रा हुई। इधर चंदनबाला को मनोवेग पूर्व के स्नेह एवं मोह के कारण अपहरण कर ले गया और पत्नी के भय से उसे एक अटवी में छोड़ गया। वहाँ भील ने उसका शील भंग करना चाहा, पर जब वह शील भंग करने में सफल न हुआ तो कुछ पैसों के लोभ में उसे कौशाम्बी के वैश्या बाजार में बेचने ले आया। चंदनबाला का पुण्य जाग्रत हुआ और उसी समय कौशाम्बी नगर के श्रेष्ठी श्री वृषभसेन उसे खरीद कर बेटी बनाकर अपने घर ले आये।

बस ! चित्रसेना का जीव जो कि श्रेष्ठी वृषभसेन की पत्नी सुभद्रा के रूप में यहाँ मौजूद था और पूर्व में निदान बंध किया था कि मैं भी इसे कलंकित करूँगी। यद्यपि उसे यह सब पता नहीं था, पर कर्म की प्रेरी उस सुभद्रा सेठानी के मन में क्रमशः संशय का बीज पनपता

रहा और मौका पाकर उसने एक दिन चंदनबाला का सिर मुडवाकर उसे एक कोठरी में बंद कर दिया।

इस बात से हमें यह शिक्षा सदा याद रखनी चाहिए कि वास्तव में कोई भी परद्रव्य, पर–व्यक्ति या द्रव्यकर्म का उदय हमें दुःखी नहीं करता। हमारा भावकर्म ही हमें दुःखी करता है। अतः हमें परद्रव्य से राग–द्वेष करके कषाय नहीं बढ़ाना चाहिए, कर्मोदय के फल को ज्ञाता स्वभाव के जोर से समतापूर्वक भोगते हुए उनकी निर्जरा करनी चाहिए। यह नहीं भूलना चाहिए कि जबतक कुल्हाड़ी में लकड़ी का बैंट नहीं डलता, तबतक वह वृक्षों को काटने में समर्थ नहीं होती। इसीप्रकार जबतक हमारे कर्मों का उदय नहीं होता, तबतक कोई भी परद्रव्य हमें कष्ट देने में निमित्त भी नहीं होता और उस कर्म के उदय या परद्रव्य से हम न जुड़े तो वह निमित्त भी नहीं कहलाता।

उपलक्षण से यह भी समझ लेना चाहिए कि दुःख की भांति सुख, जीवन, मरण भी कोई किसी अन्य का नहीं कर सकता है; क्योंकि ये सभी कर्मोदय से होते हैं और कर्म कोई किसी को दे नहीं सकता। आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने समयसार के बंध अधिकार की गाथा क्र.स 247 से 267 में कहा भी है, जिसका डॉ. हुकमचंद भारिल्ल कृत पद्यानुवाद इसप्रकार है –

मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन !247
निज आयु क्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं ?248
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं?249
मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन !250

सब आयु से जीवित रहें – यह बात जिनवर ने कही।
जीवित रखोगे किस तरह जब आयु दे सकते नहीं ?251
सब आयु से जीवित रहें यह बात जिनवर ने कही।
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं ?252
मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो ?253
हैं सुखी होते दुःखी होते कर्म से सब जीव जब।
तू कर्म दे सकता न जब सुख-दुःख दे किस भाँति तब।।254
हैं सुखी होते दुःखी होते कर्म से सब जीव जब।
दुष्कर्म दे सकते न जब दुःख दर्द दें किस भाँति तब ?255
हैं सुखी होते दुःखी होते कर्म से सब जीव जब।
सत्कर्म दे सकते न जब सुख-शांति दें किस भाँति तब ?256
'मैं सुखी करता दुखी करता' यही अध्यवसान सब।
पुण्य एवं पाप के बंधक कहे हैं सूत्र में।।260
'मैं मारता मैं बचाता हूँ' यही अध्यवसान सब।
पाप एवं पुण्य के बंधक कहे हैं सूत्र में।।261
मारो न मारो जीव को हो बंध अध्यवसान से।
यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से।।262
इस ही तरह चोरी असत्य कुशील एवं ग्रंथ में।
जो हुए अध्यवसान हों वे पाप का बंधन करें।।263
ये भाव अध्यवसान होते वस्तु के अवलम्ब से।
पर वस्तु से ना बंध हो हो बंध अध्यवसान से।।265
जिय बँधे अध्यवसान से शिवपथ-गमन से छूटते।
गहराई से सोचो जरा पर में तुम्हारा क्या चले ?267

इस कथानक से यह बात सहज ही समझ लेना चाहिए कि चाहे पुण्यकर्म हो या पापकर्म हो, आसानी से कोई भी संक्रमित होकर एक-

दूसरे रूप नहीं होता; क्योंकि यदि आसानी से होने का विधान होता तो चंदनबाला का वह कलंक लगानेवाला कर्म भी बदल जाता जबकि राजा चेटक की बेटी, महारानी त्रिशला, महारानी चेलना, महारानी मृगावती जैसों की बहिन होने का लाभ तो मिला, लेकिन उस कष्ट और कलंक से नहीं बच सकी। **पर ध्यान रहे, कोई भी कर्म आत्मा को दुखी करने में समर्थ नहीं है, कर्म के उदय में चंदनबाला की तरह ज्ञानी उसके भी ज्ञाता रहकर सुखी हो जाते हैं और अज्ञानी चित्रसेना की तरह उससे जुड़कर अर्थात् अपने दुख का कारण उसे या उससे प्राप्त संयोगों को मानकर वर्तमान में दुखी होते हैं और आगामी दुखों को आमंत्रण देते हैं।**

अत: हमें निरन्तर सावधान रहना चाहिए, छोटी–छोटी बातों को अपने चित्त से नहीं लगाना चाहिए, तत्त्वज्ञान के बल से उन्हें उदयजनित जानकर उनका ज्ञाता रहते हुए प्रतिक्षण भवकटी पुरुषार्थ जागृत करते रहकर मनुष्य भव के बहुमूल्य क्षणों को सार्थक करना चाहिए, बाकी संयोगों एवं पर्यायों का क्या ? आज हैं कल नहीं, पर हमारा भगवान आत्मा तो शाश्वत सुखमयी तत्त्व है। आज तक अपने विपरीत विचारों से उसकी विराधना करके दुख भोगा है।

अब यदि अपने को संसार समुद्र में नहीं डुबोना चाहते हो तो चित्रसेना की तरह विपरीत विचार न करके चंदनबाला की तरह सम्यक् विचार करें, तो अवश्य ही भवसागर से पार हो सकते हैं।

चंदनबाला ने तीर्थंकर भगवान महावीर के समवसरण में जाकर अर्जिका की दीक्षा ली और 36000 आर्यिकाओं में श्रेष्ठ गणिनी पद को सुशोभित किया एवं अन्त में पर्याय पूर्ण होने पर समाधि पूर्वक मरण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई।

7

धातकीखण्ड में अजितसेन चक्रवर्ती

(भगवान चन्द्रप्रभु का चौथा पूर्वभव)

धातकीखण्ड के कौशल नगरी में राजकुमार अजितसेन अपने पिता महाराज अजितंजय और माता महारानी अजितसेना के साथ सुखपूर्वक रहते थे। राजकुमार अजितसेन एक बार राजसभा में बैठे थे। आनंदमय चर्चा चल रही थी, इतने में उनके पूर्वभव का शत्रु कोई दुष्ट देव वहाँ आया और सभाजनों को मूर्छित करके राजकुमार का अपहरण कर ले गया। मूर्च्छा दूर होने पर राजा ने घबराकर सभा में देखा तो वहाँ राजकुमार को न देखकर उन्हें चितभ्रम हो गया कि अरे, यह क्या हुआ, राजकुमार कहाँ गया ? पुत्र के वियोग से राजा-रानी दोनों का संसार नीरस हो गया। अरे, हमारा पुत्र कहाँ चला गया ? अब हम उसे कब देखेंगे ? ऐसी चिन्ता में क्षण भर तो दोनों मूर्च्छित हो गये।

थोड़ी देर में मूर्च्छा दूर होने पर राजा ने आँखें खोलकर ऊपर दृष्टि की तो अहा हा ! उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा। उनने देखा कि आकाश से एक महान तपस्वी ऋद्धिधारी मुनिराज उनकी ओर आ रहे हैं। मुनिराज को देखते ही राजा सब दुःख भूल गये, हृदय में आनंद का सागर उमड़ने लगा। सच ही है मुमुक्षु आत्मा, धर्मात्मा का संग होने से दुनिया के सब दुःख भूल जाता है।

श्री मुनिराज ने राजा को मंगल आशीर्वाद दिया और कहा कि हे भव्य ! तुम चरमशरीरी हो। मैं आकाश मार्ग से जा रहा था तब मैंने देखा कि तुम पुत्र वियोग से दुःखी हो रहे हो। तुम्हारे गुणों के अनुराग से प्रेरित होकर मैं यहाँ आया हूँ। हे राजन् ! तुम तत्त्वज्ञानी हो, तुम्हें सब स्व-पर का भेदज्ञान है और तुम संसार का स्वरूप भले

प्रकार जानते हो, चित्त में से इष्ट वियोग का विषाद दूर करो तथा हे राजन् ! अवधिज्ञान से जानकर मैं कहता हूँ कि तुम्हारा पुत्र कुशल है, उसका कुछ भी अमंगल नहीं होगा। वह भावी तीर्थंकर है और कुछ ही दिनों में अनेक प्रकार की समृद्धि सहित आकर तुमसे मिलेगा।

मुनिराज इतना कहकर, आशीर्वाद देकर आकाश मार्ग से विहार कर गये। मुनिराज के ऐसे वचनों से राजा का चित्त शांत हुआ और धर्मध्यान में विशेष रूप से उद्यमी हुआ।

दूसरी ओर जो दुष्ट देव राजकुमार का अपहरण कर ले गया था, उसने राजकुमार को मगरमच्छ से भरे हुए एक सरोवर में फेंक दिया। परन्तु पुण्य प्रताप से राजकुमार किनारे आ गये। चारों ओर घोर जंगल था उस वन में चलते-चलते वे एक सुंदर पर्वत पर पहुँचे। वहाँ हिरण्य नाम का एक देव रहता था, वह उनकी शूरवीरता देखकर प्रसन्न हुआ और बोला हे पुण्यात्मा ! मैं आपका सेवक हूँ जब आप याद करोगे तब मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा, क्योंकि पूर्व जन्म में आपने मुझ पर उपकार किया था। आज उसका ऋण चुकाने का मुझे अवसर मिला है, अत: मैं आपकी सेवा में तत्पर हूँ।

'किसप्रकार ?' ऐसा राजकुमार के पूछने पर देव ने कहा- पूर्वभव में मैं सूर्य नाम का किसान था, तब चन्द्र नाम के किसान ने मेरा धन चुरा लिया था, वह धन आपने मुझे वापस दिलाया था और चन्द्र को

मृत्युदण्ड दिया था। वह चन्द्र मरकर अनेक भवों में भटकते-भटकते चण्डरुचि नाम का असुर देव हुआ है और वही पूर्वभव के वैर से आपका अपहरण करके आपको यहाँ लाया है। मैं जो सूर्य नाम का किसान था अब हिरण्यदेव हुआ हूँ और अपने पर किये गये आपके उपकार से उपकृत होकर आपकी सेवा में आया हूँ – ऐसा कहकर राजकुमार को उस वन के बाहर छोड़कर वह देव अदृश्य हो गया।

उपकार कभी व्यर्थ नहीं जाता। अतः हमें परस्पर में उपकार करने की भावना रखनी चाहिए। अवसर पाकर अपनी भूमिकानुसार उपकार करना भी चाहिए। संसार में कोई भी स्वाधीन नहीं है साधक भी ऐसा करते हुए अपनी साधना पूर्ण करते हैं।

राजकुमार ने आश्चर्यपूर्वक एक नगरी में प्रवेश किया, उसका नाम था विपुल नगरी, वहाँ के नगरजन धन-धान्यादि से सुखी थे, परन्तु एक शत्रु राजा के भय से अत्यन्त भयभीत थे। राजकुमार ने उस राजा को पराजित करके उनके भय को निर्मूल कर दिया और वहाँ की राजकुमारी से विवाह करके अपनी कौशल नगरी लौट आये। प्रतापी पुत्र के नगर आगमन से माता-पिता को अपार हर्ष हुआ और पिता महाराज ने राजकुमार का राज्याभिषेक कर दिया, वह अपने महान् पुण्य प्रताप से चक्रवर्ती पद को प्राप्त हुआ।

एक दिन चक्रवर्ती अजितसेन राज्यसभा में बैठे थे, हजारों राजा मुकुट झुकाकर उनका अभिवादन कर रहे थे, नगरजन भी उनके दर्शनों से प्रसन्न हो रहे थे, तथापि चक्रवर्ती के अन्तर की गहराई में वैराग्य का चिन्तन चल रहा कि कब इस सब उपाधि से छूटकर निरूपाधि चैतन्य ध्यान में स्थिर होऊँ। कब मुनि होकर वीतरागता प्रगट करूँ और अपने स्वरूप में ही विचरूँ !

राज्यसभा व्यवस्थित चल रही थी। इतने में राजा की दृष्टि एक

भव्य हाथी पर पड़ी, उस विशालकाय हाथी को कुछ योद्धा अनेक प्रकार से ताड़ना देकर युद्ध की शिक्षा दे रहे थे। चारों ओर शस्त्र प्रहार की प्रतिकूलता के बीच बहादुरी से किसप्रकार लड़ना – यह सिखा रहे थे। वह देखकर राजा को लगा कि अरे, इस दुःखमय संसार में चारों ओर की प्रतिकूलता में भी शूरवीरता पूर्वक आत्मसाधना में किस प्रकार विजय प्राप्त करना उसकी शिक्षा परमगुरु भव्य मुमुक्षुओं को देते हैं। हाथी की वह ताड़ना देखकर राजा का चित्त संसार से अत्यन्त उदास हुआ। इतने में उस हाथी ने एक सिपाही को सूँड में पकड़ लिया और पछाड़ कर उसका चूरा-चूरा कर दिया। बस, जीवन की ऐसी क्षणभंगुरता देखकर और हाथी की ताड़ना देखकर महाराज अजितसेन का चित्त अत्यन्त विरक्त हो उठा और वैराग्य से वे चिन्तन करने लगे कि –

"करूँगा...करूँगा...करूँगा" – ऐसी चिंता मैं लीन हुआ मूढजीव "मरूँगा...मरूँगा...मरूँगा" – यह बात तो भूल ही जाता है, मानो मृत्यु कभी आनी ही न हो। इसप्रकार निश्चिंतता से मूर्ख जीव बाह्य विषयों में लगा हुआ है और मनुष्य जीवन को प्रतिक्षण बर्बाद कर रहा है।

इसप्रकार निजस्वभाव के वीतरागी चिंतन द्वारा चक्रवर्ती विचारते हैं। जिसप्रकार मैं यहाँ शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्ती हुआ हूँ, उसीप्रकार अब मुनिदशा में समस्त परभावरूप शत्रुओं को परास्त करके धर्म चक्रवर्ती बनूँगा और अखण्ड मोक्ष साम्राज्य को प्राप्त करके मैं सदा आत्मा के शुद्ध स्वरूप में निवास करूँगा।

इसप्रकार चिंतन करते हुए उन्होंने आचार्य श्री गुणप्रभ स्वामी के पास दिगम्बरी दीक्षा धारण की और ज्ञान, ध्यान एवं तप में लीन रहते हुए समाधिमरण पूर्वक देह त्याग कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र पर्याय प्राप्त की।

८

महाराजा पद्मनाभ

(भगवान चन्द्रप्रभ का दूसरा पूर्वभव)

धातकीखण्ड के विदेहक्षेत्र में रत्नसंचयपुर के राजा कनकप्रभ और रानी सुवर्णमाला के एक होनहार पद्मनाभ नाम का पुत्र था।

एक बार राजा कनकप्रभ राजमहल की छत पर बैठे-बैठे नगर सौन्दर्य का अवलोकन कर रहे थे। इतने में देखा कि एक बूढ़ा बैल गहरे कीचड़ में धस गया है और तड़प-तड़प कर मर गया है। यह देखकर राजा को वैराग्य जागृत हुआ, वे विचारने लगे कि अरे ! अभी भी मैं इस संसार के मोहरूपी कीचड़ में धसा हुआ हूँ ? ऐसा विचार करने पर वे धर्मात्मा कनक राजा संसार सुखों से अत्यन्त विरक्त हो गये और तत्काल ही उनका चित्त मुनिमार्ग में प्रविष्ट हुआ, उन्होंने तुरन्त अपने पुत्र पद्मनाभ को राज्य सौंपकर श्रीधर मुनिराज के समीप मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

राजसभा में बैठे हुए राजा पद्मनाभ को अचानक कोलाहल सुनाई दिया – ''बचाओ-बचाओ की आवाजें तेजी से सुनाई देने लगी।''

हाथी-घोड़े भी भय से चिल्लाने व भागने लगे। क्या हुआ, क्या हुआ? इसप्रकार चारों ओर से आवाजें आने लगीं।

इतने में राजा ने देखा कि एक अतिसुंदर विशाल गजराज नगर की ओर दौड़ता हुआ आ रहा है, वह मदोन्मत्त होकर भाग रहा है और जो चपेट में आये उसे सूँड में कसकर फेंक रहा है या पैरों से कुचल रहा है। लोग भयभीत होकर कोलाहल कर रहे हैं उस हाथी को वश में करने लिए राजा पद्मनाभ कटिबद्ध हुए। उन्होंने युक्तिपूर्वक हाथी

को वश में कर लिया। हाथी भी मानों पुण्यवन्त राजा को पहचान गया हो, अतः शान्त होकर उनकी आज्ञा मानने लगा। उस पर बैठकर राजा पद्मनाभ नगरी में आये और नगरजनों ने विजयोत्सव के रूप में भव्य स्वागत किया। वह हाथी भी सूँड उठा–उठाकर सबको प्रणाम कर रहा था, मानो नगरजनों से क्षमा याचना ही कर रहा हो।

यह वनकेलि नाम का हाथी पड़ोसी राजा पृथ्वीपाल का था। अतः जब पृथ्वीपाल को पता चला कि उसका हाथी राजा पद्मनाभ के पास है। तब उसने राजा पद्मनाभ के पास अपना दूत भेजकर संदेश भेजा। राजदूत ने राजा पद्मनाभ को राजसभा में संदेश सुनाया।

हे महाराज ! हमारा प्रिय गजराज 'वनकेलि' आपके राज्य की सीमा में आया और आपने पकड़कर उसे अपनी सवारी के लिये रख लिया – ऐसा करके आपने हमारे राजा का अपमान किया है, अब आप उस हाथी को हमें वापस दे दीजिये अन्यथा हमारे राजा युद्ध करके अपना हाथी लेना जानते हैं।

पद्मनाभ समझ गये कि राजा पृथ्वीपाल युद्ध के लिये ललकार रहा है– दूत को उत्तर देने के लिये उन्होंने युवराज की ओर आँख का संकेत दिया।

कुशल युवराज सुवर्णनाभ पिता के भाव को समझ गया, उसने दूत को सम्बोधन कर कहा– सुन दूत ! तेरे राजा चाहे जितने शक्तिशाली हों, परन्तु उनका अभिमान ही उनका विनाश करेगा। क्या तेरे राजा के पास दूसरा हाथी नहीं है, जो इस हाथी की भीख माँगने के लिए तुझे भेजा है ? जब तुम्हारा हाथी पागल होकर प्रजाजनों को कुचल रहा था तब कहाँ गया था तेरा राजा ? उस समय हमारे महाराजा ने महान पराक्रम से उस हाथी को जीतकर वश में किया है। इसप्रकार उलाहना देकर दूत को लौटा दिया।

हाथी नहीं लौटाने से दोनों राजाओं में युद्ध की तैयारी होने लगी। युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय भी धर्मात्मा पद्मनाभ अपनी आत्मसाधना को नहीं भूले थे, किंचित् मानकषाय के कारण युद्ध करने जा रहे थे, तथापि कषाय रहित आत्मशांति भी साथ थी।

राजा पृथ्वीपाल भी अपनी सेना लेकर पद्मनाभ से युद्ध करने चल पड़ा। दोनों राजाओं की सेनायें युद्ध के लिये आमने-सामने आ गयीं। युद्ध प्रारम्भ हो गया।

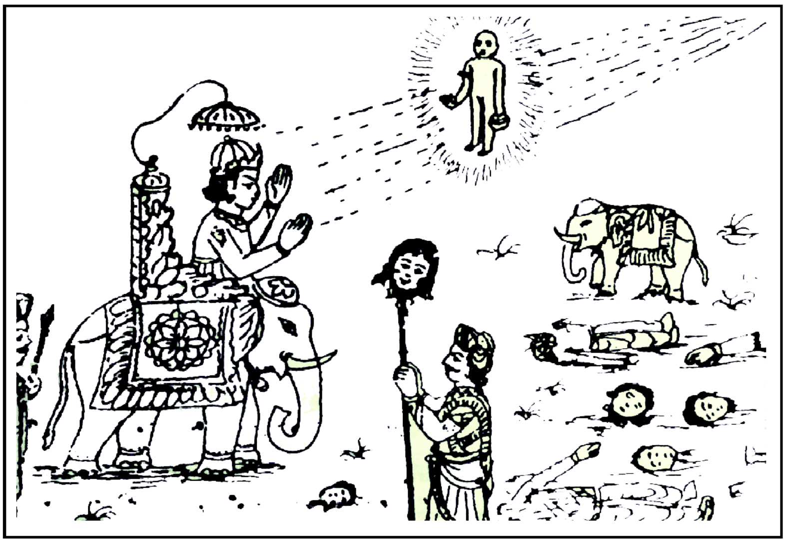

अचानक पृथ्वीपाल के सेनापति चन्द्रशेखर ने पद्मनाभ के सेनापति भीमरथ को मस्तक में बाण मारकर मूर्च्छित कर दिया। भीमरथ की मूर्च्छा दूर होने पर उसने घोर पराक्रम द्वारा सेनापति चन्द्रशेखर को बाणों से भेध डाला, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी, तुरन्त ही पृथ्वीपाल का युवराज धर्मपाल युद्ध करने आ गया। वीर युवराज सुवर्णनाभ ने उसे युक्तिपूर्वक जीवित ही बंदी बना लिया तब पृथ्वीपाल क्रोधित होकर स्वयं युद्ध करने तैयार हुआ। राजा पद्मनाभ ने भी हाथी

वनकेलि को पृथ्वीपाल के हाथी से टकराकर ऐसा अस्त्र प्रहार किया कि पृथ्वीपाल का मस्तक पृथ्वी पर लौटने लगा। इतने में एक सैनिक राजा पृथ्वीपाल का मस्तक भाले में पिरोकर पद्मनाभ के पास लाया .... वह करुण दृश्य देखते ही राजा पद्मनाभ चौंक उठे, उन्हें पूर्व भव का स्मरण हो आया, उनका चित्त संसार से एकदम विरक्त हो गया और वे विचारने लगे – अरे, इस एक हाथी के लिये इतनी हिंसा !

अरे पूर्वभव में मैं चक्रवर्ती था तब मैंने चौरासी लाख श्रेष्ठ हाथियों को एक क्षण में त्यागकर दीक्षा ले ली थी और आज इस एक हाथी के मोह में क्यों फँस गया ? यह मोहबंधन शोभा नहीं देता ऐसी भावना से पश्चाताप पूर्वक क्षमाभाव धारण करके उन्होंने युवराज धर्मपाल को मुक्त कर दिया और बोले – हे बेटा ! अपने पिता की राजगद्दी तू सँभाल और युवराज सुवर्णनाभ का भी मित्र बनकर रहना। युवराज का राज्याभिषेक कर राजा पद्मनाभ, श्रीधर मुनिराज से जिनदीक्षा अंगीकार कर अब ज्ञान-ध्यान-तप में लीन रहने लगे।

यह सब दृश्य देखकर गजराज वनकेलि भी वैराग्य को प्राप्त हुआ। मैं पशु नहीं हूँ मैं तो मुनि भगवंत समान शान्त स्वरूप आत्मा हूँ। ऐसे वेदन के साथ सम्यग्दर्शन से अलंकृत होकर वह भी अणुव्रत अंगीकार कर अपने स्वामी के चरण चिह्नों पर चलने लगा।

मुनिराज जहाँ-जहाँ विहार करते वहाँ गजराज भी उनके साथ जाता – आत्मचिंतन करता – वैराग्यमय जीवन बिताता। मुमुक्षु श्रावक भी हाथी की चर्या को देखकर वैराग्य प्राप्त कर लेते – धर्म की अपार महिमा जागृत होती। मुनिराज तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर समाधिपूर्वक वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र हुए और तत्त्वचर्चा करते हुए पर्याय पूर्णकर आगामी भव में भरतक्षेत्र की चौबीसी के आठवें तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभ हुए। बोलिये चन्द्रप्रभ भगवान की जय हो।

9

विद्युच्चर राजकुमार के परिणामों की विचित्रता

मगधदेश में हस्तिनापुर नाम का महानगर है, वहाँ का राजा संवर एवं उसकी प्रियवादिनी श्रीषेणा नाम की रानी थी। उनका विद्युच्चर नाम का पुत्र था। विद्युच्चर जैसे-जैसे कुमार अवस्था को प्राप्त होता गया, वैसे-वैसे उसने बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण अस्त्र-शस्त्र आदि अनेक विद्याएँ शीघ्र ही सीख लीं। एक दिन उसको पापोदय से खोटी बुद्धि उत्पन्न हुई।

वह सोचने लगा-''मैंने सब कलायें सीखीं, परन्तु चौर्यकला नहीं सीखी। उसका भी मुझे अभ्यास अवश्य करना चाहिए।'' ऐसा विचार कर उसने एक रात्रि में अपने ही पिता के महल में धीरे-धीरे चोर की तरह जाकर बहुमूल्य रत्न चुराये। वे रत्न अति ही प्रकाशमान थे। जब वह रत्न चुराकर लौट रहा था, तब राज्य कर्मचारियों ने उसे देख लिया। सुबह होते ही उन्होंने कुमार के द्वारा की गई चोरी का वृतान्त राजा से कह दिया। चोरी की बात सुनते ही राजा ने कर्मचारियों को आज्ञा दी कि शीघ्र ही कुमार को यहाँ लाया जाए। कर्मचारियों के कहने पर कुमार शीघ्र ही आकर वीर सुभट के समान निर्भीकता से पिता के समक्ष खड़ा हो गया।

राजा ने उसे अपने मृदु वचनों से समझाया-''बेटे ! यह चोरी करना तूने कहाँ से सीख ली ? और चोरी तूने क्यों की ? इस राज्य में समस्त मनवांछित सामग्री उपलब्ध है। उसका भोग-उपभोग तुम अपनी मर्जी से खूब करो। तुम्हें कोई रोक-टोक तो है नहीं और फिर ये राज्य-वैभव तुम्हारे लिए ही तो है। अन्यत्र प्राप्त न होने वाली समस्त

वस्तुएँ भी अपने यहाँ सहज उपलब्ध हैं। फिर चोरी करने का क्या काम है ? चौर्य कर्म तो महापापमय है और लोकनिंद्य भी । इससे तो जीव वर्तमान में ही अगणित दुःखों को पाते हैं और जगत में अपयश के पात्र बनते हैं। विवेकहीन हो यहाँ सन्ताप को प्राप्त होते हैं और परलोक में भी महादुःख प्राप्त करते हैं, इसलिये ऐसे कार्य को भविष्य में तुम कभी नहीं करना।''

जैसे ज्वर पीड़ित को मिष्ट भोजन नहीं सुहाता है, वैसे ही पाप से मोहित विद्युच्चर को पिता द्वारा दी गई सुखप्रद सीख अच्छी नहीं लगी। वह बड़ों की मान-मर्यादा को तोड़कर पिता को जवाब देने लगा- ''हे पिता महाराज ! चौर्य कर्म और राज्य में बड़ा अन्तर है। राज्य में तो परिमित लक्ष्मी होती है, मगर चोरी से अपरिमित लक्ष्मी का लाभ होता है, इसलिए दोनों में समानता नहीं हो सकती। आपको चौर्यकर्म से भी गुण ग्रहण करना चाहिए।''

इसप्रकार कह कर वह कुछ भी सोचे-विचारे बिना पिता के वचनों का उल्लंघन करके क्रोधाग्नि से कुपित होकर घर से निकल गया और राजगृही नगरी में जाकर वहाँ चौरी के साथ-साथ एक वैश्या के चक्कर में फँस गया। उसके रूप पर मोहित होकर उसके साथ इच्छानुसार विषय-कषाय में मग्न होकर रहने लगा तथा उसकी हर इच्छा पूर्ण करने में तत्पर वह सातों व्यसनों में लीन होकर समय व्यतीत करने लगा।

अब धीरे-धीरे उस विद्युच्चर चोर ने अपना गिरोह इतना बढ़ा लिया कि उसके गिरोह में 500 और चोर शामिल हो गये और वह उनका सरदार बन गया। देखो ! परिणामों की विचित्रता, जो स्वयं राजपुत्र था अर्थात् भविष्य का राजा था, आज वही चोरों का राजा बन गया है।

एक दिन जब नगर श्रेष्ठी अर्हद्दास के पुत्र जम्बूकुमार का चार-

चार श्रेष्ठी कन्या रत्नों से विवाह सम्पन्न हुआ, तब इस 500 चोरों के सरदार विद्युच्चर चोर ने सोचा–''आज ही जम्बूकुमार का विवाह हुआ है, तो वहाँ बहुत धन-सम्पत्ति मिलेगी, इसलिये आज वहीं जाया जावे।''

अतः वह चोरी की भावना से अर्हद्दास के महल में आया। लेकिन उसने देखा कि यहाँ तो कुमार एवं रानियाँ विषय-कषाय को भूलकर धार्मिक तत्त्वचर्चा कर रहे हैं। तब वह सोचने लगा–

''यह कैसा आश्चर्य ? सारा जगत तो इस रात को विषयों में डूबे रहते हैं और इस कुमार को क्या हो गया है ? भोग के समय योग कर रहा है। वाह ! यहाँ तो राग के बदले वीतरागता की वार्ताएँ हो रही हैं। ये राज्य-वैभव, ये भोग-सामग्री, ये चार-चार सुंदर देवांगनाओं जैसी रानियाँ, उनकी हाव-भाव पूर्ण चेष्टाएँ भी इस सुमेरू कुमार को डिगा नहीं सकीं। अहो आश्चर्य ! महा आश्चर्य ! इसका क्या कारण है ? मैं अवश्य इसे जानकर रहूँगा।'' ऐसे जिज्ञासा भाव से वह वहीं छुपकर खड़ा हो गया और उन सबकी बातें सुनने लगा।

मानो सब प्रकार की कलाओं में पारंगत होने का उसका भाव फिर जागृत हो गया और अब वह जीवोद्धार की इस कला को भी सीखना चाहता है।

कला बहत्तर पुरुष की जामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका एक जीव उद्धार।।

यह नीति है सत्पुरुषों के जीने की, पर विद्युच्चर को इससे पूर्व यह बात स्वयं तो समझ में आई ही नहीं, पिताजी के समझाने पर भी नहीं आई और जब समझ में आई तो बिना किसी के समझाये स्वयं समझ में आ गई। इसीलिए तो कहते हैं कि सभी कार्य अपने स्वसमय में अपनी योग्यता से होते हैं।

अब वह अपने को धिक्कारता है –''अरे ! जिसके पास न्याय-नीति से उपार्जित धन-सम्पदा एवं भोग उपलब्ध हैं वह तो उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता और मैं अन्याय एवं चोरी से परधन को लूटना चाहता हूँ, मुझे धिक्कार है, आज से मैं भी चौर्यकर्म आदि पापों को छोड़ता हूँ और अब जो कुमार की गति होगी वही मेरी गति होगी।''

ऐसे विचारों में मग्न विद्युच्चर कुमार के कक्ष की खिड़की पर बैठा हुआ था। माता भी व्याकुल चित्त से घूम रही थी। वह देखती है कि यहाँ कोई व्यक्ति खड़ा हुआ है। वह उसके पास पहुँचती है। विद्युच्चर चोर ने पहले ही आकर माता जिनमति के चरणों में प्रणाम किया और बोला – हे माते ! मैं विद्युच्चर चोर हूँ, मैं चोरी करने आपके यहाँ आया हुआ था। मैं पहले भी आपके महल से धन सम्पदा चुरा कर ले गया हूँ, मगर आज कुमार एवं रानियों की चर्चा सुनकर मैंने चौर्यकर्म का त्याग कर दिया है। अब तो मेरी भावना मात्र इतनी ही है कि एकबार मुझे कुमार से मिलवा दीजिए, मैं अवश्य ही उन्हें समझाकर घर में रहने को तैयार कर लूँगा, मुझे ऐसा पूर्ण विश्वास है।

माता जिनमति तो यह चाहती ही थी कि किसी भी प्रकार से पुत्र घर में रह जाये। उन्होंने तुरन्त जम्बूकुमार के पास जाकर युक्तिपूर्वक सम्पूर्ण वार्ता बताई ''हे पुत्र ! तुम्हारे मामा, जो कि बहुत दिनों से परदेश गए हुए थे, आज वे आये हुए हैं और तुमसे मिलना चाहते हैं।''

मुक्ति कान्ता के अभिलाषी कुमार उदास चित्त से मामाजी के पास पहुँचे और बोले – ''हे मातुल प्रणाम।''

तभी मामा (विद्युच्चर) ने अत्यंत स्नेहमयी दृष्टि डालते हुए कुमार को हृदय से लगाकर कहा – ''हे कुमार ! हे बेटे ! आपने वीर प्रभु की दिव्यदेशना तो सुनी ही है। उसमें दो प्रकार के धर्म का वर्णन आया है। एक गृहस्थ धर्म और दूसरा मुनि-धर्म तो तुम गृहस्थ धर्म का पालन क्यों नहीं करते हो ?''

तब जम्बूकुमार अत्यन्त मृदु शब्दों में बोले– ''हे मातुल ! आप बहुत दिनों बाद मुझसे मिले हो और वह भी ऐसे प्रसंग में, इसलिये मेरे ऊपर अत्यन्त स्नेह होना स्वाभाविक है; परन्तु हे मातुल ! आप तत्त्वानुरागी हैं, अध्ययनशील हैं, जिनदेशना एवं उसके मर्म के जानकार हैं कि मार्ग तो एक ही प्रकार का है, परन्तु संसारी जीवों की दशा को देखकर उसका निरूपण दो प्रकार से किया गया है। परन्तु आत्महित का तो एकमात्र उपाय दिगम्बरी दीक्षा धारण कर शुद्धोपयोग रूप आत्मस्वरूप में स्थिर होना ही है।

इसप्रकार सभी को संतुष्ट करते हुए कुमार ने मौन का आवलंबन ले लिया, इतने में ही प्रातःकाल की सूर्यकिरण फूट पड़ी और जम्बूकुमार के साथ विद्युच्चर चोर ने अपने 500 साथियों सहित मिथ्यात्व एवं पंच-पापों को त्यागकर जिनेश्वरी दीक्षा धारण की। जिनशासन की शरण अंगीकार की। जम्बूस्वामी तो अपनी साधना पूरी कर मोक्ष पधारे, पर विद्युच्चर आदि 500 मुनिराज अपनी साधना पूरी कर पाये या नहीं – यह जानने के लिए आगामी कथा का रसास्वादन लीजिए।

10

विद्युच्चर मुनिराज का संघ सहित समाधिमरण

जम्बूस्वामी तो क्षपकश्रेणी की तैयारी कर मोक्ष जाने हेतु एकाकी ध्यान में लीन हो गये और एकादश अंग के धारक आचार्य विद्यच्चर मुनिराज संघ सहित आगमानुसार विहार करते हुए एक दिन मथुरा नगर के उद्यान में पधारे। साथ में 500 से भी अधिक मुनिवरों का संघ है। सभी मुनिराज तल्लीनता पूर्वक निजात्मा में बारम्बार उपयोग ले जाकर शाश्वत आनंद का रसपान कर रहे हैं।

इसी बीच एक दिन चंद्रमारी नाम की कोई वनदेवी आकर प्रणाम करके कहती है –"हे गुरुवर ! आज से लेकर पाँच दिन तक यहाँ भूत-प्रेतादि आकर आपके ऊपर घोर उपसर्ग करेंगे, जिसे आप सहन नहीं कर सकेंगे, इसलिये आपको यहाँ से विहार कर जाना ही श्रेष्ठ होगा।"

मोक्षसुख के अभिलाषियों के लिए आत्मानंद के उपयोग के सामने उपसर्ग परीषह क्या मायने रखते हैं? फिर भी गुरुराज का कर्त्तव्य है कि वे संघस्थ मुनिराजों को विपत्ति का ज्ञान करावें, जिससे सभी के भावों का पता चल सके इसलिये श्री विद्युच्चर मुनिराज ने अपने संघ को कहा – यहाँ पाँच दिन तक घोर उपसर्ग होगा, इसलिए अपने को अन्यत्र विहार करना योग्य रहेगा।

तब मेरू समान अचल सभी मुनिवरों ने हाथ जोड़कर गुरुराज से कहा–"हे गुरुवर! हम सभी को वैराग्य की वृद्धि में हेतुभूत उपसर्गों पर विजय प्राप्त करना ही श्रेष्ठ है। कायर बनकर उपसर्गों से दूर भागना वीतराग मार्ग के साधकों को योग्य नहीं है प्रभो !

"आचार्य श्री विद्युच्चर मुनिराज सहित सभी मुनिवर कायोत्सर्ग धारण कर निर्भयी आत्मा में विचरने लगे।"

अंधकार ने अपना पूर्ण साम्राज्य जमा लिया था। तभी भूत, प्रेत एवं राक्षसों ने आकर अपना भयानक रूप दिखाकर चारों ओर भागना-दौड़ना प्रारम्भ कर दिया और भयानक स्वर में चिल्लाने लगे। कितने ही तो डाँस मच्छर बनकर काटने लगे, कितने ही सर्प के समान फुफकारने लगे। इस तरह पाप में रत राक्षसों ने मुनिवरों पर जैसा भयंकर उपसर्ग किया, उसका वर्णन नहीं हो सकता। सभी मुनिराजों ने निश्चल ध्यान में मेरू पर्वत के समान स्थिर हो सभी प्रकार के उपसर्गों पर विजय प्राप्त की।

उपसर्ग के शांत होते ही सभी ने चार प्रकार की आराधना की और प्रातःकाल की बेला में समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। आचार्य विद्युच्चर मुनि सवार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये। इसीप्रकार प्रभव आदि पाँच सौ मुनि भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार देह त्यागकर देव हुए। इस भव में साधना अधूरी रह गई, पर आगामी भवों वे अपनी साधना पूर्ण करके अवश्य मोक्ष प्राप्त करेंगे।

संसार का स्वरूप

1. संसार दुःखों का समुद्र है। निरन्तर एक गति से दूसरी गति में परिभ्रमण करता रहता है।
2. यहाँ स्थिरता नहीं है, ध्रुवता नहीं है, सदा आकुलता ही आकुलता है।
3. यहाँ अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक दुःख भोगता रहता है।

शारीरिक दुःख – जन्म, मरण, वृद्ध होना, भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी आदि से पीड़ित होता रहता है।

मानसिक दुःख – इष्ट का वियोग व अनिष्ट का संयोग पाने पर रोग-पीड़ा आदि के कारण चिंतित व आकुलित होता रहता है।

इसप्रकार संसार संबंधी अनेक दुःखों की भयंकरता भासित हो और असार संसार का स्वरूप समझकर हम उसकी रुचि छोड़ें, उससे उदासीन होकर मुक्त होने का उपाय करें। – पं. पन्नालालजी गिड़िया की डायरी से

11

पराश्रित परिणाम नियम से दुःखदायी

(त्रिपृष्ठ वासुदेव–विजय बलदेव और अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव)

हम यहाँ शासन नायक महावीर स्वामी के उस पूर्वभव की कथा उत्तर पुराण के आधार से कह रहे हैं जिस भव में वे त्रिपृष्ठ नाम के वासुदेव भरतक्षेत्र की पोदनपुरी में महाराजा प्रजापति के पुत्र रूप में हुए थे, जो पूर्वभव में विश्वनंदि नाम से विख्यात थे। इन्हीं के साथ इनके पूर्वभव के काका विशाखभूति भी यहीं विजय बलदेव के रूप में जन्में। तथा विशाखभूति का विशाखनंदि नाम का पुत्र अलकापुरी में अश्वग्रीव नामक प्रतिवासुदेव के रूप में जन्मा।

पूर्वभव के राग–द्वेष वश ये तीनों जीव यहाँ भी राग–द्वेष के कारण इतनी विभूति पाकर भी सदा दुःखी ही रहे।

महाराजा प्रजापति दोनों पुत्रों सहित राजसभा में बैठे थे। उस समय मंत्री ने निवेदन किया कि हे स्वामी ! यद्यपि आपकी प्रजा सर्व प्रकार से सुखी है तथापि आजकल एक महाभयंकर सिंह ने लोगों की हिंसा करके उसे भयभीत कर रखा है। उसका उपद्रव इतना बढ़ गया है कि लोग इधर–उधर आ–जा भी नहीं सकते। जो प्रजा का दुःख दूर न कर सके वह राजा किस काम का ?

ऐसा विचार कर राजा ने सिंह के उपद्रव से प्रजा को बचाने हेतु सेना को तैयार होने की आज्ञा दी।

इतने में त्रिपृष्ठ कुमार (महावीर का जीव) उठे और हँसकर बोले–इतने छोटे से काम के लिये आपका जाना आवश्यक नहीं है। मैं अभी जाकर सिंह को मारता हूँ। ऐसा कहकर त्रिपृष्ठ कुमार वन में

गये सिंह को गुफा से बाहर निकाला और झपट्टा मारकर उसे नीचे पछाड़ दिया, तदनुसार सिंह का मुँह फाड़ दिया, जिससे सिंह का तत्काल ही मरण हो गया। अरे रे ! सिंह को मारने के क्रूर परिणामवश अब अगले भवों में इसे सिंह की पर्याय में जाना पड़ेगा। हिंसा में आनंद मनाने रूप 'हिंसानदी आर्तध्यान के परिणाम से नरक गति का बंध होता है।

सिंह को मारने से राजकुमार त्रिपृष्ठ के पराक्रम की प्रशंसा चारों ओर फैल गई और कोटिशिला को ऊपर उठाकर उन्होंने महान पराक्रम का प्रदर्शन किया। इस कोटिशिला से करोड़ों मुनिवरों ने मोक्ष प्राप्त किया है।

विद्याधरों के राजा ज्वलनजरी ने अपनी पुत्री स्वयंप्रभा का विवाह त्रिपृष्ठ के साथ किया, तब उसके प्रतिस्पर्द्धी राजा अश्वग्रीव को अपमान लगा। इससे क्रोधित होकर वह त्रिपृष्ठ के साथ युद्ध करने चला।

शस्त्र विद्या साधकर दोनों भाईयों ने युद्ध के लिये प्रस्थान किया। घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। त्रिपृष्ठ का पराक्रम अद्‌भुत था प्रथम प्रहार में ही शत्रु सेना को तीन भागों में विभक्त कर दिया।

विजय और त्रिपृष्ठ द्वारा अपने कितने ही शूरवीर विद्याधरों का नाश होते देखकर अश्वग्रीव ने चक्र हाथ में लेकर गर्जना की, तब भावी महावीर ऐसे त्रिपृष्ठ ने निर्भयरूप से कहा – रे अश्वग्रीव ! तेरी गर्जना व्यर्थ है, जंगली हाथी की गर्जना से हिरन डरते हैं, सिंह नहीं; कुम्हार के चाक जैसे तेरे इस चक्र से मैं नहीं डरता..... चला अपने चक्र को।

अन्त में अत्यन्त क्रोधित होकर अश्वग्रीव ने वह चक्र त्रिपृष्ठ पर फेंका मानो चक्र के बहाने उसने अपना पुण्य ही फेंक दिया। भयंकर ज्वाला फेंकता हुआ चक्र ज्यों-ज्यों त्रिपृष्ठ कुमार की ओर बढ़ रहा था, त्यों-त्यों उसकी ज्वालायें शांत होती जा रही थी, कुछ ही क्षणों में वह चक्र त्रिपृष्ठ के दायें हाथ पर आ गया, सभी को बड़ा आश्चर्य

हुआ और वह चक्र अपने नये स्वामी त्रिपृष्ठ के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। तुरन्त वही चक्र क्रोधावेश में त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव पर फेंका। उस चक्र ने अश्वग्रीव की ग्रीवा को छेद दिया और वे त्रिपृष्ठ वासुदेव के रूप में प्रसिद्ध हुए।

त्रिपृष्ठ वासुदेव ने विजय बलभद्र सहित त्रिखण्ड के राज्य का दीर्घकाल तक उपभोग किया। पिता प्रजापति ने दीक्षा ग्रहण कर केवलज्ञान प्रगट प्रकार करके निर्वाण प्राप्त किया।

त्रिपृष्ठ कुमार निदानबंध के कारण विषयों के ध्यान सहित निद्रावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ और सातवें नरक में जा गिरा। तीव्र विषयाशक्तिजनित पापफल में वह जीव असंख्यात वर्ष के महाभयानक दुःखों को प्राप्त हुआ।

अपने भाई त्रिपृष्ठ की मृत्यु होने पर विजय बलभद्र छह मास तक उद्वेग में रहे, पश्चात् वैराग्य प्राप्त जिनदीक्षा धारण की ओर मोक्ष पद प्राप्त किया।

सदा साथ रहने वाले दो भाई, उनमें से एक ने मोक्षसुख प्राप्त किया और दूसरे ने विषय–कषायवश सातवें नरक के घोर दुःख पाये।

इससे परिणामों की विचित्रता तथा उनका विचित्र फल सहज ही ख्याल में आता है। अतः हमें अपने परिणामों को सदा स्वाश्रित ही रखना चाहिए, पराश्रित परिणाम नियम से दुःखदायी होता है।

विश्वनंदि आदि में ऐसा बैरभाव किस कारण हुआ यह जानने के लिए आगामी कथा का स्वाध्याय अवश्य करें।

आवश्यकता से अधिक कमाना भी भूख से अधिक खाने के समान हानिकारक है। – ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

12

राजगृही में विश्वनंदि (महावीर स्वामी) राजकुमार

राजगृही नगरी के राजा विश्वभूति के पुत्र रूप में धर्म प्राप्त करने हेतु अवतरित हुआ 'विश्वनंदि' कुमार का जीवन चरित्र यहाँ प्रस्तुत है अथवा उनके बहाने महावीर स्वामी के जीव का मानो मोक्षमार्ग ही बताया जा रहा है।

राजा विश्वभूति श्वेत केश देखकर संसार से विरक्त हुए और अपने भाई विशाखभूति को राज्य सौंपकर तथा विश्वनंदी को युवराज पद देकर मुनि हुए।

युवराज विश्वनंदि ने एक अति सुंदर उद्यान बनवाया था जिसके प्रति उन्हें अति ममत्व था, क्यों न हो ? जबकि वह उद्यान ही उसके चैतन्य उद्यान के खिलने में कारणभूत होने वाला है।

राजा विशाखभूति का पुत्र विशाखनंदि ने वह अद्‌भुत उद्यान देखा और उसका मन मोहित हो गया। उसने माता-पिता के पास वह उद्यान उसे दिलवा देने की हठ की। अपने पुत्र को उद्यान दिलवा देने के लिये काका विशाखभूति ने कपटपूर्वक विश्वनंदि को काश्मीर राज्य पर विजय प्राप्त करने के बहाने राज्य से दूर भेज दिया। युवराज शत्रु को जीतने के लिये सेना सहित चल दिया। उसके जाने के बाद चचेरे भाई/विशाखनंदि ने उसके उद्यान पर अधिकार कर लिया। शत्रु राज्य पर विजय प्राप्त कर विश्वनंदि राजगृही लौट आया। लौटते ही उद्यान देखने गया। जहाँ विशाखनंदि आधिपत्य जमाकर उनसे लड़ने को तैयार बैठा था। युवराज ने उसके साथ युद्ध किया। वह डर कर एक विशाल वृक्ष पर चढ़ गया, तब युवराज विश्वनंदि ने उस पेड़ को ही उखाड़

डाला। अंत में विशाखनंदि उसकी शरण में आया और चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा।

यह देखकर उदार हृदय विश्वनंदि को दया आई और उसका क्रोध शांत हो गया। अरे ! भाई के साथ युद्ध करके अब में पितातुल्य काका विशाखभूति को क्या मुँह दिखाऊँ? इसप्रकार लज्जित होकर वह राज्य छोड़कर दीक्षा हेतु वन में जाने को तैयार हुआ। दुर्जनों द्वारा किया गया अपकार भी सज्जनों को कभी–कभी उपकार रूप हो जाता है जिस उद्यान के मोहवश विश्वनंदि को युद्ध करना पड़ा, उसे छोड़कर अब वह मुनिदीक्षा ग्रहण करने हेतु वन में संभूत मुनिराज के निकट पहुँच गया, स्वानुभूतिपूर्वक जिनदीक्षा अंगीकार की। राजा विशाखभूति ने भी जिनदीक्षा ग्रहण करली।

इधर राजगृही में उनका पुत्र विशाखनंदि शक्तिहीन तथा पुण्यहीन था, कुछ ही समय पश्चात एक राजा ने उसका राज्य जीत लिया और वह रास्ते पर भटकता हुआ भिखारी बन गया।

यहाँ मुनि विश्वनंदि ने एकबार मासोपवास किये पश्चात् पारणा हेतु मथुरा नगरी में पधारे और जब वे ईर्यासमिति पूर्वक मार्ग में चल रहे थे, तभी एक बैल ने उन्हें सींग मारा और वे धरती पर गिर पड़े।

ठीक उसी समय राज्य भ्रष्ट विशाखनंदि वहाँ एक वैश्या के घर के पास खड़ा था। उसने वह दृश्य देखा और पूर्व के बैर का स्मरण करके अट्टाहस पूर्वक कटाक्ष किया कि रे विश्वनंदि ! कहाँ गया तेरा वह बल ? तूने तो पूरे वृक्ष को अपने बाहुबल से उखाड़ दिया था उसके बदले आज एक बैल के धक्के से गिर पड़ा है। कहाँ गया तेरा वह बाहुबल ?

विश्वनंदि मुनि की सुषुप्त कषाय जागृत हो उठी, क्रोधावेश में वे अपने मुनिपद को भूल गये। रत्नत्रय का अमूल्य निधान और उसके महाफल

मोक्ष को भूलकर मानो उन्होंने अमूल्य रत्न को पानी के भाव बेच दिया और निदान शल्य से अपने आत्मा को भंयकर दुःख में डाल दिया।

क्रोधवश उनके नेत्रों से अंगारे झरने लगे और वे बोल उठे–अरे दुष्ट तू मेरे तप की हँसी उड़ाता है, परन्तु देख लेना इस तप के प्रभाव से भविष्य में मैं तुझे सबके सामने छेद डालूँगा। इसप्रकार अज्ञानवश वे निदान कर बैठे कि मुझे भविष्य में विद्याधर की विभूति प्राप्त हो और मैं विशाखनंदि को मारूँ, जिन्होंने अपने तप व सम्यक्त्व रत्न को जला दिया – ऐसे उन विश्वनंदि मुनि का जीव निदान शल्य सहित मरकर महाशुक्र नामक दसवें स्वर्ग में देव हुआ।

विशाखनंदि का जीव भी किसी कारणवश वैराग्य प्राप्त कर मुनि हुआ, परन्तु एक बार आकाश मार्ग से जाते हुए विद्याधर की विभूति को देखकर निदान शल्य कर बैठा कि ''मुझे ऐसी विभूति प्राप्त हो।'' अमृत के फल में विष माँगा और मरकर वह भी दसवें स्वर्ग में देव हुआ।

13

मनुष्य दुखी और तिर्यंच सुखी

(भगवान शांतिनाथ पूर्वभव दूसरा)

पुण्डरीकिणी नगरी के महाराजा घनरथ के पुत्र मेघरथ (शांतिनाथ) और दृढ़रथ कुमार (गणधर चक्रायुद्ध) हुए। वे दोनों भाई आत्मज्ञानी, एवं शांतपरिणामी थे।

दो मुर्गों के उद्धार का प्रसंग——एक बार घनरथ राजसभा में सपरिवार बैठे थे। धर्म चर्चा चल रही थी कि अचानक उस चर्चा में भंग पड़ गया, क्योंकि महाराजा घनरथ की दृष्टि दो लड़ते हुए मुर्गों पर पड़ी, दयालु महाराजा ने तुरन्त उन दोनों का युद्ध रोकने की भावना से पुत्र मेघरथ को पूछा – हे मेघरथ ! इन दोनों मुर्गों को एक-दूसरे के प्रति इतना बैर भाव क्यों है ?

तब अवधिज्ञानी मेघरथ कुमार ने कहा – ये दोनों मुर्गे पूर्वभव में सगे भाई थे, परन्तु एक बैल के स्वामित्व को लेकर दोनों में लड़ाई हुई और दोनों ने एक-दूसरे को मार डाला। फिर दोनों जंगली हाथी हुए, भैंसा हुए, मेंढे हुए और परस्पर लड़-लड़ कर मरते रहे। अब वे दोनों भाई इस भव में मुर्गे होकर लड़ रहे हैं। कषाय के संस्कार जीवों को कितना दुःख देते हैं? कषाय से छूटे तभी जीव को शांति मिलेगी। दोनों मुर्गे भी अपने पूर्वभवों की बात सुनकर एकदम शान्त हो गये, जातिस्मरण ज्ञान हुआ, आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, बैर भाव दूर हो गया और अहिंसक भाव पूर्वक शरीर का त्यागकर व्यन्तर देव हुए।

यहाँ विचारणीय विषय यह है कि मनुष्य पर्याय में अविवेक और कषायवश बैल के पीछे लड़ मरे; न बैल मिला, न मनुष्यभव रहा, फलस्वरूप अनेक दुर्गतियों के दुःख और भोगने पड़े। और मुर्गे की

पर्याय में विवेकी होकर कषाय शांत की तो देवगति मिली। अतः कभी भी कषाय का कारण बनने पर भी कषाय नहीं बढ़ाना चाहिये, बल्कि ज्ञान बढ़ाकर कषायों को मंद-मंदतर-मंदतम करते हुए नष्ट ही करना श्रेयस्कर है।

दो मुर्गों की कथा सुनाने के बाद मेघरथ ने दिव्यज्ञान से जानकर कहा कि इस समय इस राज्यसभा में दो विद्याधर भी गुप्त रूप से मुर्गों के भवों की बात सुन रहे हैं।

यहाँ आये हुए दोनों विद्याधर चरमशरीरी हैं तथा हे पिता महाराज! जब आप पूर्वभव में ऐरावतक्षेत्र में अभयघोष राजा थे, तब यह दोनों विद्याधर आपके पुत्र थे।

मेघरथ की बात पूर्ण होते ही दोनों विद्याधर प्रसन्नता सहित प्रगट हो गये और अत्यन्त आदर सहित अपने पूर्वभव के पिताश्री के दर्शन किये। उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ, कुल, संसार से विरक्त होकर उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण की ओर केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षपद को प्राप्त हुए।

अचानक दो देव दिव्य विमान लेकर वहाँ आये और मेघरथ को दिव्य वस्त्राभूषणों की भेंट देकर कहने लगे — हे नाथ ! पूर्वभव में हम दोनों मुर्गे थे और अब व्यंतर देव हुए हैं। आपके उपकार का स्मरण करके हम आपकी सेवा करने आये हैं, आप हमारे देव विमान में विराजो, हम आपको ढाईद्वीप की यात्रा करायेंगे। मेघरथ कुमार ने देवों की बात स्वीकार कर सपरिवार ढाई द्वीप की वंदना की और सकुशल वापस आ गये। सज्जन पुरुष अपने ऊपर किये गये उपकार को नहीं भूलते और फिर अन्य उपकारों की अपेक्षा धर्म का उपकार तो सर्वश्रेष्ठ है।

महाराज घनरथ को संसार से वैराग्य जाग्रत हुआ, उन्होंने मेघरथ को राज्य सौंपा और स्वयं वन में जाकर जिनदीक्षा धारण की।

शुक्लध्यान द्वारा पूर्ण वीतरागता एवं सर्वज्ञता प्रगट कर हितोपदेश देने लगे। ऐसे घनरथ तीर्थंकर अनेक वर्षों तक भव्यजीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर अंत में चार अघाति कर्मों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त हुए।

कबूतर और गिद्ध की घटना——महाराज मेघरथ राज्य का संचालन कर रहे थे इतने में एक आश्चर्यजनक घटना हुई, अचानक वहाँ एक कबूतर आया, वह भय से काँप रहा था, उसके पीछे एक भयंकर गिद्ध पड़ा था।

गिद्ध मनुष्य की भाषा में बोला – हे महाराज ! आप दयालु हैं, दानेश्वर हैं, मैं बहुत भूखा हूँ और माँस ही मेरा भोजन है इसलिये वह कबूतर मुझे दे दीजिये। नहीं तो मैं भूख से मर जाऊँगा। आपको कबूतर की रक्षा करना हो तो उसके वजन का माँस मुझे अपने शरीर से काट दीजिये।

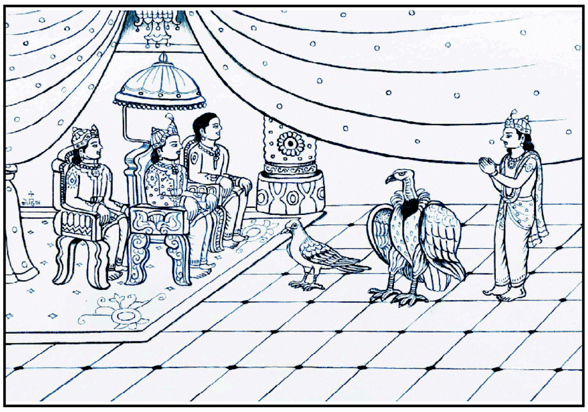

मेघरथ ने अवधिज्ञान से सब जान लिया और कबूतर व गिद्ध के साथ-साथ अपनी राजसभा को संबोधित करते हुए बोले – ये दोनों जीव पूर्वभव में वणिक पुत्र थे और सगे भाई थे, ये अत्यंत लोभी थे इसलिए धन के लिये लड़े और एक-दूसरे को मारकर कबूतर तथा गिद्ध हुए हैं। पूर्वभव की बात सुनकर उन दोनों पक्षियों का चित्त शांत हुआ।

एक बात और – आज इन्द्र सभा में मेरी प्रशंसा सुन एक देव कौतुहलवश मेरी परीक्षा करने यहाँ आया है, जो इस गिद्ध के शरीर में प्रवेश करके मनुष्य की भाषा में कबूतर माँग रहा है।

राजा ने कहा – गिद्ध के शरीर में स्थित हे देव ! सुन तेरी यह माँग अनुचित है। कबूतर वह कोई भक्ष्य नहीं है और न दान देने की वस्तु है। मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं का दान धर्म में निषिद्ध है। माँस भले अपने शरीर का हो तब भी वह दान देने योग्य वस्तु नहीं है तथा गिद्ध आदि मांसभक्षी जीव दान देने के लिये पात्र भी नहीं है। हाँ ! पूर्वकाल में कबूतर के बदले अपने शरीर का माँस दान में देने वाले एक अज्ञानी राजा की कथा लोगों में प्रसिद्ध है, परन्तु वह बात धर्म सिद्धांत में मान्य नहीं है तथा वह राजा और वह दान प्रशंसनीय नहीं है। अरे ! क्या माँस का दान दिया जाता है ? नहीं ! वह तो पाप है, हिंसा है अविवेक है, लेने तथा देने वाले दोनों के लिये दुर्गति का कारण है।

तब गिद्ध के शरीर में स्थित वह देव प्रगट होकर राजा की स्तुति करके अपने स्थान पर चला गया। गिद्ध कबूतर के जीव भी मेघरथ राजा का उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए और धर्म के संस्कार सहित शरीर त्यागकर व्यन्तर देव हुए। उन दोनों देवों ने आकर उपकार माना और "आपकी कृपा से हम तुच्छ तिर्यंच पर्याय से छूटकर व्यंतर देव हुए हैं" – ऐसा कहकर वे भी अपने गंतव्य को चले गये।

शील–संयम की परीक्षा – राजा मेघरथ ने एकबार पर्व तिथि में प्रोषधोपवास किया था, दिनभर आत्मसाधना में रहकर रात्रि के समय एकान्त उद्यान में जाकर वे धर्मात्मा ध्यान में स्थित हुए।

इन्द्रसभा में इन्द्र ने राजा मेघरथ की प्रशंसा में कहा— अहो ! उन महात्मा को धन्य है ! इस समय वे मेरू समान अचल दशा में आत्मध्यान कर रहे हैं उनका शीलगुण भी अद्‌भुत है, उन्हें नमस्कार हो !

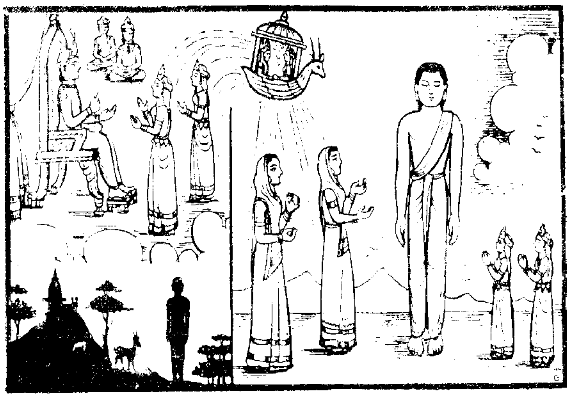

यह सुनकर दो देवियाँ उनकी परीक्षा करने के लिये पृथ्वी पर आईं और उन्हें ध्यान से डिगाने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के हाव-भाव दिखा कर उपद्रव करने लगीं – ऐसे भयंकर दृश्य उपस्थित किये तथा मनोहर हाव-भाव गीत-विलास, आलिंगनादि कामवर्धक काम चेष्टायें कर करके उन्हें ध्यान से च्युत करने का निरर्थक प्रयास करने लगीं; क्योंकि मेघरथ तो मेरू समान अचल ही रहे। परमात्म तत्त्व के आनंद में लीन मानो वे ऐसे लग रहे थे मानो उपसर्ग के कारण वस्त्रों से ढँके कोई निर्ग्रंथ मुनिराज ही खड़े हो। अंत में देवियों ने अपनी हार स्वीकार कर उन्हें वंदन किया, क्षमायाचना की और उनकी स्तुति करके स्वर्ग चली गईं। रात्रि व्यतीत होते ही मेघरथ ने निर्विघ्न रूप से अपना कायोत्सर्ग पूर्ण किया।

अहा ! शील तो स्वभाव का नाम है तथा जो स्वभाव के आश्रय में ही सच्चा सुख मानते हों और स्वभाव का ही आश्रय लिए हों, उन्हें यह बाह्य जड़ विलासिता अपने स्वभाव से कैसे डिगा सकती है? फिर भी स्वभाव न जाननेवाले अज्ञानी यह समझकर व्यर्थ ही दुःखी होते हैं कि हम अपनी इस विलासिता से किसी को भी ध्यान से च्युत कर देंगे। परन्तु भाई ! अपने स्वरूप से तो वे ही च्युत होते हैं, जो स्वरूप को परिपूर्ण अनुभव नहीं करते और पर से पूर्ण करना चाहते हैं।

महारानी प्रियमित्रा की रूप-प्रशंसा——मेघरथ की महारानी प्रियमित्रा वे भी धर्म साधना में साथ दे रही हैं, वे शीलवती, गुणवती

तथा अतिशय रूपवती हैं। एकबार इन्द्रसभा में इन्द्राणी ने प्रियमित्रा के गुणों की तथा रूप की प्रशंसा की, जिससे प्रभावित होकर दो अप्सरायें उनका रूप देखने के लिये स्वर्ग से आयीं। उस समय महारानी अलंकार उतारकर सादे वेश में थी। सादा वेश में देखकर भी वे अप्सरायें आश्चर्यचकित हो उनके रूप की प्रशंसा करने लगीं।

अपनी प्रशंसा सुनकर गर्व से महारानी ने कहा –'हे देवियो ! अभी नहीं, कुछ समय पश्चात् जब मैं श्रृंगार करके वस्त्राभूषण सहित तैयार होऊँगी, तब तुम मेरा अद्भुत रूप देखना।'

कुछ ही समय पश्चात् वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर जब महारानी सिंहासन पर बैठीं, तब उनका रूप देखकर दोनों देवियों ने प्रसन्न होने के बदले निराशा से सिर हिलाया।

रानी ने पूछा – क्यों ? देवी ने कहा – हे सुभांगी ! पहले श्रृंगार रहित तुम्हारा रूप हमने देखा था, वैसा अब नहीं रहा; क्योंकि यह शरीर ही प्रतिसमय बदल रहा है, क्षीण हो रहा है। मनुष्यों का ज्ञान इतना पैना नहीं होता जिससे वे प्रतिसमय के परिवर्तन को जान सकें, पर देवों का ज्ञान इतना पैना होता है कि वे यह भेद जान लेते हैं; तदनुसार उन देवियों ने कहा कि ''अब वह नहीं रहा''।

यह सुनते ही प्रथम तो रानी क्षुब्ध हो गई, पर महाराज मेघरथ के समझाने पर बोध को प्राप्त हुई, फलस्वरूप उसे इस अनित्यता को देखकर वैराग्य आ गया और शरीर के सौन्दर्य की ऐसी क्षणभंगुरता से विरक्त हो वह दीक्षा लेने को तैयार हो गई।

भगवान घनरथ तीर्थंकर का नगरी में आगमन हुआ। मेघरथ व दृढ़रथ दोनों भाई एवं महारानी प्रियमित्रा ने जिनदीक्षा ग्रहण करली और निर्दोष चर्या का पालन करते हुए सभी समाधिपूर्वक मरण को प्राप्त कर स्वर्ग सिधारे।

(14)

श्रीकृष्ण की जन्मकथा एवं पृष्ठभूमि

(22वें तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभु एवं उनके कुल में जन्में तद्भव मोक्षगामी श्री प्रद्युम्न कुमार, शंबुकुमार आदि तथा इसी कुल में जन्में श्रीकृष्ण–बलदेव आदि 63 शलाका के महापुरुष, जो नियम से मोक्षगामी होते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन टुकड़ों में जैनधर्म की कहानियाँ भाग–1,3,17 एवं 19 में प्रकाशित हो चुका है। पाठक वहाँ से अवश्य लाभ प्राप्त करें। यहाँ तो मात्र श्रीकृष्ण के जन्म एवं पूर्वभव तथा उनसे सम्बंधित उनके माता–पिता, शत्रु–मित्र एवं पुत्रादि का संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं।)

यदुराजा (श्री कृष्ण के परदादा)

अंधकवृष्टि (शौरीपुर के राजा) **नरवृष्टि** (मथुरा के राजा)

10 पुत्र 2 पुत्रियाँ 1 पुत्र (उग्रसेन राजा)

ज्येष्ठपुत्र (समुद्रविजय)

कंस–पुत्र देवकी–पुत्री

लघुपुत्र (वसुराज)

कुंती (3 पाण्डव पुत्र) माद्री (2 पाण्डव पुत्र)

पत्नि–रोहिणी पत्नि–देवकी (कंस की बहिन)

(शंख का जीव – 9वें बलभद्र बलदेव)

6 पुत्र (3 युगल)

(निर्नामिक का जीव – 9वें नारायण श्रीकृष्ण)

(16 हजार रानियाँ, जिनमें मुख्य सत्यभामा आदि 8)

रुक्मणि जामवंती

प्रद्युम्नकुमार (तद्भव मोक्षगामी) शंबुकुमार (तद्भव मोक्षगामी)

वसुराज का पूर्वभव – अंधकवृष्टि के दश पुत्रों में से समुद्रविजय आदि नौ पुत्र तो पूर्वभव में भाई ही थे और दीक्षा लेकर मुनि हुए थे। वे स्वर्ग में जाकर पुनः यहाँ अवतरित हुए हैं। दसवें पुत्र वसुराज (श्री कृष्ण के पिता) वह पूर्वभव में नन्दिसेन नामक निर्धन तथा कुरूप मनुष्य थे और दुःखों से व्याकुल होकर आत्महत्या का विचार कर रहे थे, उस समय शंख और निर्नामिक नामक जो कि भविष्य में बलभद्र तथा कृष्ण होंगे, ऐसे दो मुनिराजों ने उसे देखा और उसे निकटभव्य तथा अगले भव में यह हमारे पिता होने वाले हैं – ऐसा जानकर उन मुनियों ने उसे आत्महत्या करने से रोका और धर्म का स्वरूप समझाकर जिनदीक्षा दी। वे नन्दिसेन मुनि वैयावृत्य तप में प्रसिद्ध थे, उनको अनेक लब्धियाँ प्रगट हुई थीं। जैन शासन में धर्मात्मा के वैयावृत्य की अपार महिमा है।

नन्दिसेन मुनिराज मुनियों की परम सेवा करते थे, परन्तु वे एक भूल कर बैठे। वे दुर्गन्धित शरीर से त्रस्त होकर मुनि हुए थे, उस शल्य के कारण वे ऐसा निदान कर बैठे कि ''धर्म के प्रताप से भविष्य में मुझे अतिसुंदर-रूपवान शरीर प्राप्त हो।'' इसलिये स्वर्ग से जाकर फिर वह जीव अंधकवृष्टि का सबसे छोटा पुत्र वसुराज हुआ, जो अतिसुंदर और रूपवान था।

अरेरे ! अपना आत्मा जो स्वभाव से ही अतिसुन्दर और सुखमयी है तथा आश्रय लेनेवाले को सुखदाता भी है, उसका विस्मरण कर नंदिसेन मुनि ने ये क्या जड़ शरीर की सुंदरता मांग ली। अरे ! इस मुनि पर्याय से तो मोक्ष मिल सकता था, जो अनंत सुखमयी और स्थिर है। जड़ शरीर में तो सुख भी नहीं और स्थिरता भी नहीं। अपने विपरीत विचारों से ही यह जीव हाथ में आया हुआ चिंतामणि रत्न छोड़कर काँच के टुकड़ों में संतुष्ट हो जाता है। अत: सुखस्वरूप होकर भी सदा दुःखी रहता है।

वसुराज का वर्तमान भव एवं बलभद्र का जन्म – महाराजा समुद्रविजय का सबसे छोटा भाई वसुराज अतिरूपवान था, वह जब नगर में घूमने निकलता तब नगर की स्त्रियाँ उसके सुंदर रूप पर मोहित हो जातीं और गृहकार्य भूल जाती, नगरजनों ने यह आपत्ति महाराजा के समक्ष प्रकट की, जिससे महाराजा ने उसे युक्तिपूर्वक राजमहल में ही रोक कर नगर में जाना बंद करा दिया। इससे दुःखी होकर वह नगर छोड़कर चला गया और छल से ऐसी अफवाह फैलायी कि वह स्वयं चिता में जल मरा हो।

अहो ! देखो तो सही, इसे कहते हैं अपने हाथ से अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना। वसुराज ने अपने पूर्वभव में मुनिदशा पाकर भी देहातीत सिद्धदशा तो नहीं चाही और सुंदर देह मांगी, फलस्वरूप आज अपने ही महल में अपराधियों की तरह कैद रहना पड़ा। हे जीव ! अब तो ऐसे विपरीत विचार छोड़ दे।

वसुराज के वियोग से समुद्रविजय अत्यन्त दुःखी हुए, परन्तु निमित्त ज्ञानियों ने कहा कि वह कुमार जीवित है और अमुक वर्ष पश्चात् आपका उससे मिलाप होगा।

वसुराज राजगृही गया। वहाँ से एक विद्याधर उसे विजयार्द्ध पर्वत पर ले गया फिर वह चम्पापुर गया। उसे जगह-जगह राज कन्याओं सहित अनेक प्रकार के वैभव की प्राप्ति हुई। अंत में वह रोहिणी के स्वयंवर में गुप्त वेश में पहुँचा और रोहिणी ने उसे वरमाला पहनायी। अन्य राजा अपमानित होकर उससे लड़ने लगे, अंत में समुद्रविजय लड़ने के लिए तैयार हुए, उन्हें देखकर वसुराज ने उनके चरणों में पत्र सहित एक बाण फेंका जिस पर लिखा था – ''आपका छोटा भाई चरणों में नमस्कार करता है।''

"मेरा भाई जीवित है"– यह जानकर उन्हें अति हर्ष हुआ। ऐसे महान हर्षपूर्वक उन्होंने अपने भाई के साथ शौरीपुर में प्रवेश किया।

कुछ समय पश्चात् शंख मुनि का जीव स्वर्ग से आकर वसुराज की रानी रोहिणी की कुक्षि से नौवें बलभद्र के रूप में जन्मा।

यद्यपि बलदेव बलभद्र के जन्म के तत्काल बाद उनके साथी नारायण कृष्ण के जन्म का वर्णन करना चाहिए था। तथापि कृष्ण की माँ देवकी कंस की बहिन थी, इसलिए कंस का वर्णन प्रसंग प्राप्त जानकर पहले कर रहे हैं। **कंस कौन था तथा उसने अपने ही पिता को जेल में क्यों डाला और अपनी ही बहिन के पुत्रों को मारने का दुस्साहस क्यों किया ? यह सब जानने के लिए अब पढ़िये –**

मथुरा में राजा कंस राज्य करता था। कंस का जीव पूर्वभव में वसिष्ठ नाम का बाबा था, परन्तु जैन मुनियों के उपदेश से धर्म प्राप्त करके वह जैन साधु हो गया था और एक-एक महीने के उपवास करता था। तब मथुरा के राजा उग्रसेन ने अविचारी भक्ति से ऐसी आज्ञा की कि इन मुनि को मासोपवास का पारणा मैं ही कराऊँगा, दूसरा कोई न करावे; परन्तु मुनिराज जब पारणे हेतु नगर में पधारे तब राजमहल में हस्ती, अग्नि आदि का उपद्रव होने से राजा उन्हें पारणा नहीं करा सके। इसप्रकार मासोपवासी वसिष्ठ मुनि पारणा किये बिना तीन बार लौटे।

जब उन्हें पता चला कि उग्रसेन की आज्ञा के कारण ही ऐसा हो रहा है, तब उनके मन में राजा के प्रति बैरभाव जाग्रत हो उठा और वे विवेक को चूरकर धर्मभ्रष्ट होकर ऐसा निदानबंध कर बैठे कि मैं तप के प्रभाव से अगले भव में उग्रसेन राजा का पुत्र होकर इसका राज्य छीन लूँ और इसे कारागृह में डालूँ। बस हो चुका निदानबंध और वसिष्ठ मुनि का जीव मरकर मथुरा नगरी में उग्रसेन राजा का पुत्र हुआ, उसका नाम कंस था। उसके अशुभ लक्षण देखकर राजा उग्रसेन ने उसे मथुरा

से निकाल दिया, वह वहाँ से शौरीपुर आया और राजकुमार वसुराज का चाकर बनकर रहने लगा।

यहाँ प्रश्न है कि मुनि तो नियम से स्वर्ग ही जाते हैं, फिर वसिष्ठ मुनि का जीव मनुष्य क्यों हुआ ?

समाधान – निदानबंध के कारण।

अररे ! देखो तो बैर कितना खतरनाक है, पुत्र बनकर पिता का अहित चाहा। वाह रे ! संसार (राग–द्वेष) तेरी भी क्या विचित्रता है। किन्हीं पिता–पुत्र को रागवश मिलाता है तो किन्हीं को द्वेषवश। इसीलिए ज्ञानियों ने राग–द्वेष दोनों को ही हेय कहा है, तात्पर्य एक भी रखने लायक नहीं, करने लायक नहीं, मात्र वीतरागता ही जीव को सुखदायी तथा उपादेय है। – ऐसा निर्णय कर सब जीवों को राग–द्वेष, बैर–विरोध, निदान बंध आदि से बचना चाहिए और वीतराग स्वभाव की आराधना करना चाहिए। अपने उपयोग को तत्त्वाभ्यास व तत्त्वनिर्णय करने में लगाये रखना चाहिए।

राजगृही नगरी में राजा जरासंध राज्य करता था। वह अर्धचक्रवर्ती प्रतिवासुदेव था, उसके शस्त्र भण्डार में सुदर्शन चक्र उत्पन्न हुआ। तीनों खण्डों के सभी राजाओं को जीत लिया, परन्तु अभी सिंहरथ राजा को जीतना शेष था। कुमार वसुराज ने युक्तिपूर्वक उस सिंहरथ राजा को जीत लिया और बंदी बनाकर अपने सेवक कंस द्वारा राजा जरासंध को सौंप दिया। इससे प्रसन्न होकर जरासंध ने अपनी पुत्री जीवद्यशा तथा आधा राज्य वसुराज को देना चाहा, परन्तु वसुराज ने राज्य स्वयं न लेकर कंस को दिलवाया और जीवद्यशा का विवाह भी कंस से ही करवा दिया। एक दिन कंस ने जाना कि वह स्वयं मथुरा का राजकुमार है और पिता उग्रसेन ने बचपन से ही उसका परित्याग कर दिया था तब उसके पूर्वभव के संस्कार जाग उठे और उसने क्रोधपूर्वक पिता

उग्रसेन को बंदी बनाकर कारागृह में डाल दिया और मथुरा के राज्य पर अधिकार कर लिया। पश्चात् राजा कंस ने अपने उपकारी वसुराज को मथुरा बुलाकर उनका सम्मान किया और अपनी बहिन देवकी का उनसे विवाह कर दिया।

एकबार राजा कंस के महल में अतिमुक्तक मुनि (उनके भाई) आहार लेने आये, तब कंस की रानी जीवद्यशा ने उन मुनि की तथा उनकी बहन देवकी की हँसी उड़ाकर अनादर किया। इससे क्रोधावेश में वे मुनि वचनगुप्ति भूल गये और उनसे भविष्यवाणी हो गई कि अरे ! जीवद्यशा ! तू अभिमान के कारण जिसकी हँसी उड़ा रही है उस देवकी बहन का पुत्र ही तेरे पति तथा पिता का (कंस–जरासंध) घात करेगा। इससे कंस भयभीत हो गया और "देवकी बहन के पुत्रों को जन्मते ही मार डालना" – ऐसे दुष्ट आशय से उसने बहिन देवकी को अपने घर ही रखने का वचन वसुराज से ले लिया।

अहो ! जिन मुनिराज के आहार कराने से पंचाश्चर्य होते हैं, जीव के भव सीमित रह जाते हैं और वे मुनिराज तो स्वयं मोक्ष प्राप्त कर ही लेते हैं परन्तु यहाँ क्या हुआ ? वे अतिमुक्तक मुनिराज भी अपने स्वरूप को भूलकर उनकी भविष्यवाणी कर बैठे और कंस भी यह सुनकर वैराग्य को प्राप्त नहीं हुए, बल्कि अपनी ही बहिन के उन पुत्रों को मारने की ठान बैठे, जो अब कभी भी नहीं मरने वाले हैं अर्थात् चरमशरीरी है/इसीभव से मोक्ष जाने वाले हैं।

अत: कंस उन्हें मार तो नहीं पाया, पर मारने का भाव करके स्वयं प्रतिक्षण तो भावमरण करता ही रहा और अंत में द्रव्यमरण करके नरकादि गति को प्राप्त हुआ। अत: हे भव्य ! "जीव कभी मरता ही नहीं है" – ऐसा निर्णय कर मरणभय से मुक्त हो, ताकि सदा के लिए पर्यायमरण से भी मुक्ति मिले।

श्रीकृष्ण का जन्म——देवकी के तीन बार युगल-पुत्र (नृपदत्त-देवपाल, अनीकदत्त-अनीकपाल, शत्रुघ्न-जितशत्रु) हुए। पुण्य प्रभाव से उन चरम शरीरी पुत्रों की एक देव ने रक्षा की और उनके स्थान पर दूसरे मृतपुत्र रख दिये। कंस ने समझा कि देवकी के पुत्र तो मरे हुए ही जन्मे हैं। तथापि दुष्ट भाव के कारण उसने उन नवजात शिशुओं को पत्थर पर पछाड़कर उनका मस्तक फोड़ दिया। रे संसार ! देखो तो सही, बैरभाव की पराकाष्ठा; परन्तु जिनका पुण्य जीवित हो उन्हें कौन मार सकता है?

उन छह पुत्रों के पश्चात् देवकी को सातवें पुत्र का गर्भधारण हुआ। इस बार निर्नामिक मुनि का जीव देवकी के गर्भ में आया और देवकी ने सातवें महीने में ही पुत्र को जन्म दे दिया। जो जगत में श्रीकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

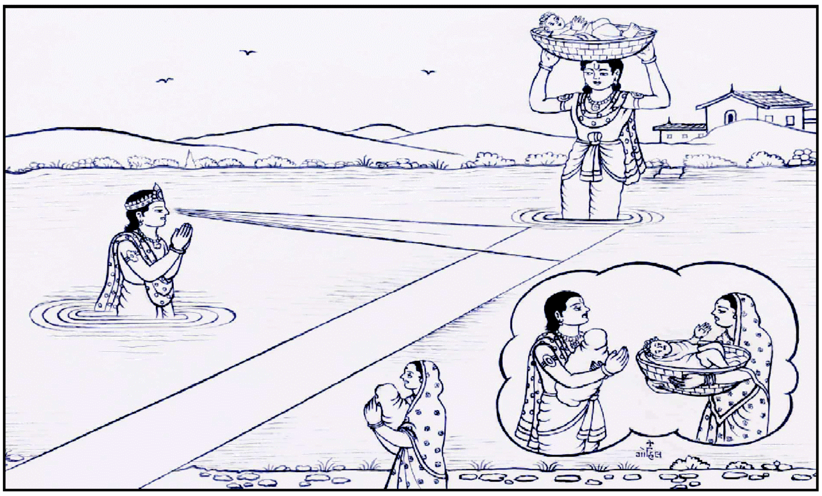

मथुरा में श्रीकृष्ण का जन्म होते ही उनके पिता वसुराज तथा ज्येष्ठ कुमार (रोहिणी पुत्र) बलदेव उन्हें गुप्त रूप से गोकुल में नन्दगोप के घर ले गये। मार्ग के अँधेरे में श्रीकृष्ण के पुण्य प्रताप से एक देव

ने दीपक द्वारा मार्ग दर्शन किया, नगर के द्वार अपने आप खुल गये और यमुना नदी का प्रवाह भी अपने आप थम गया। नदी ने दो भागों में विभाजित होकर उस पार जाने का मार्ग बना दिया।

अरे ! पुण्य का प्रभाव संसार में तो सर्वप्रकार से सहायता करता है, अपने चमत्कार दिखाता है; परन्तु मोक्ष प्राप्त कराने की उसमें रंचमात्र भी सामर्थ्य नहीं है और क्षणिक होने से नियम से नष्ट भी होता है तब जीव को नियम से नरकादि गतियों में ही जाना पड़ता है। इसलिये मोक्षार्थी जीव उस पुण्य की शरण नहीं लेते।

श्रीकृष्ण को लेकर जब वसुराज और बलभद्र गोकुल जा रहे थे, तब नन्दगोप एक मृतपुत्री को लेकर मार्ग में आते हुए मिले। बलभद्र ने बालकृष्ण को उन्हें सौंप दिया और मृतपुत्री को लेकर ऐसा प्रचारित किया कि देवकी ने मृतपुत्री को जन्म दिया है। इसप्रकार राजा कंस को भी श्रीकृष्ण के जन्म की खबर नहीं हुई। इधर नन्दगोप की पत्नी यशोदा अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनका लालन-पालन करने लगीं। कृष्ण ज्यों-ज्यों बड़े हो रहे थे, त्यों-त्यों मथुरा में उपद्रव बढ़ रहे थे। इसी से अनुमान लगाकर ज्योतिषियों ने राजा कंस को कहा कि 'आपका महान शत्रु कहीं उत्पन्न हो चुका है।'

यह सुनकर कंस चिंता में पड़ गया, उसने शत्रु को ढूँढ़ने और मारने के अनेक उपाय किये; परन्तु श्रीकृष्ण के पुण्य योग से उनका कोई कुछ नहीं कर सका। अंत में एक मल्लयुद्ध में छोटे से श्रीकृष्ण ने बड़े विशाल कंस का संहार कर दिया। कंस के पिता उग्रसेन को कारागृह से मुक्त करके उन्हें मथुरा का राज्य सौंप दिया और श्रीकृष्ण ने परिवार सहित आनंदपूर्वक शौरीपुर में प्रवेश किया।

असंतुष्ट व्यक्ति प्राप्त अवसर एवं सामग्री का भी सदुपयोग नहीं कर पाता। उसकी वृत्ति पागल कुत्ते की भाँति हो जाती है जिसे एक क्षण भी न चैन है और स्थिरता। □ ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

नमो नमो हमारा है

विश्व की विभूति को विनश्वर विचारि जिन,
देह गेह सों सनेह त्यागि तप धारा है।
धाराधर सम पाप पुंज को प्रभंजन ह्वै,
करम करिन्द को मृगिन्द बनि मारा है।
काम क्रोध मोह मद लोभ क्षोभ मान छल,
सकल उपाधि को समाधि से बिडारा है।
पाय बोध केवल सुबोधि दिये जग जन,
ऐसे जिनदेव को नमो नमो हमारा है॥

– भव्यप्रमोद से साभार

साहित्य प्रकाशन फण्ड

१००१/- किंजल बेन कुनाल दादर ह. पुष्पा बेन
१००१/- प्रेमीला बेन, तेजपुर
७५१/- सौ. बीणा बेन सुरेश भाई संघवी, अहमदावाद
५५१/- कु. हर्षा के दीक्षा ह.श्रीमती सुवाबाई ह.रवीन्द्र कोचर कटंगी
४००/- सौ. मालती बेन जगदीश भाई संघवी, अहमदावाद
२५१/- श्री प्रेमचन्द जैन अभय जैन, ह.चंद्रकला श्रुति जैन खैरागढ़
२५१/- कु. निधि, निश्चल जैन ह. श्रीमती सरला जैन, खैरागढ़
२५१/- झनकारीबाई खेमराज बाफना चे. ट्रस्ट, खैरागढ़
२५१/- ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़
२५१/- श्रीमती मनोरमा जैन विनोद कुमार जैन, जयपुर
२०१/- श्री दुलीचन्द कमलेश कुमार ह. कंचनबाई रजनी जैन, खैरागढ़
२०१/- ढेलाबाई चे. ट्रस्ट, खैरागढ़ सौ. शोभादेवी मोतीलाल जैन, खैरागढ़
२०१/- श्री रमेशचन्द साकेत जैन शास्त्री, जयपुर
१०१/- श्री सुरभि आदित्य जैन, खैरागढ़

➤ हमारे प्रकाशन ➤

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**-इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।